अहिंसा, आगम और विज्ञान से आलोकित श्रेष्ठतम पत्रिका

भाव विज्ञान

BHAV VIGYAN

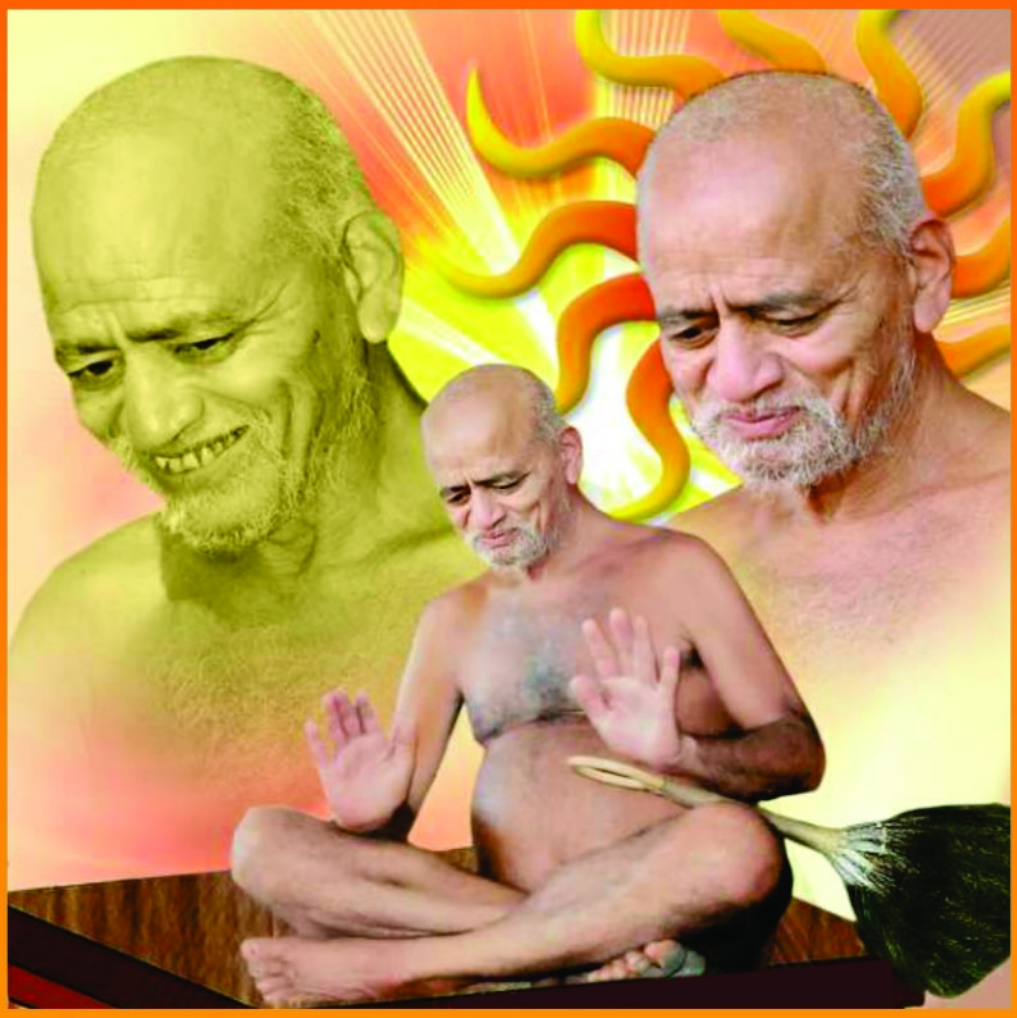

परम पूज्य संत शिरोमणि आचार्यश्री विद्यासागरजी महाराज

वीर निर्वाण संवत् - 2543
चैत्र शुक्ल पक्ष, वि.सं. 2074, मार्च 2017

वर्ष : दस

अंक : उन्तालीस

मूल्य : 10/-

पञ्चकल्याणक के पाण्डाल में घटयात्रा के साथ जिन बिम्बों को ले जाते हुए भक्तगण।

पञ्चकल्याणक महामहोत्सव का ध्वजारोहण करते हुए भानुकीर्ति जैन एवं प्रमुख पात्र।

पञ्चकल्याणक में आचार्य निमंत्रण करते हुए प्रतिष्ठाचार्य ब्र. जिनेश व ब्र. नरेश, जबलपुर।

पञ्चकल्याणक महामहोत्सव में आचार्यश्री आर्जवसागरजी के चरणों में श्रीफल अर्पित करते हुए संतोष सिंघई।

आचार्यश्री की वंदना करते हुए डॉ. संजय जैन व अरविंद जैन, सागर।

पञ्चकल्याणक महोत्सव में महाआरती करते हुए प्रवीण जैन (पप्पू) एवं रवि जैन सपरिवार।

पञ्चकल्याणक महोत्सव में सौधर्म इन्द्र (प्रवीण) एवं कुबेर (सौरभ) का महामिलन।

तीर्थंकर बालक को अभिषेक हेतु ले जाते हुए सौधर्मइन्द्र एवं स्वर्गिक परिवार।

भ. आदिनाथ की प्रतिमा के प्रदाता एवं ध्वजारोहणकर्त्ता भानुकुमार जैन, तमिलनाडु का सम्मान।

पञ्चकल्याणक दौरान श्रीजी की शोभायात्रा में श्रीजी का रथ खेंचते हुए जैन भक्तगण दमोह।

दमोह पञ्चकल्याणक दौरान विशाल पाण्डाल में धर्म की गंगा में अवगाहन करते हुए भक्तगण।

दमोह पञ्चकल्याणक में पधारे इंजी. महेन्द्र जैन, भोपाल का सम्मान करते हुए पदाधिकारीगण।

पञ्चकल्याणक पाण्डाल में विराजमान जिनालय से लाये गये श्रीजी।

मोक्षकल्याण के पावन प्रसंग पर पाण्डाल में की गई कैलाश पर्वत की संरचना।

पंडितप्रवर श्री लालचन्दजी जैन 'राकेश', भोपाल को 'आ.समन्तभद्र' अवार्ड से सम्मानित करते हुए भ.महावीर आचरण संस्था समिति, भोपाल के पदाधिकारीगण।

काँच मंदिर, दमोह में आचार्यश्री ससंघ की अगवानी के दौरान पादप्रक्षालन करते हुए भक्तगण।

पञ्चकल्याणक के दौरान 'अहिंसा महावीर चक्र' अवार्ड से सम्मानित होते हुए सुभाष जैन (दाऊ) ग्वालियर (म.प्र.)।

दमोह के पञ्चकल्याणक में 'धर्ममहावीर चक्र' अवार्ड से सम्मानित होते हुए एम. देवदास तमिलनाडु।

तीर्थंकरकुमार के दीक्षावन प्रस्थान पर मरुदेवी माता एवं नाभिराय आदि का वियोग।

तीर्थंकर कुमार स्वर्गिक पालकी में बैठकर दीक्षा वन की ओर जाते हुए।

विधिनायक प्रतिमा पर दीक्षा के संस्कार देते हुए आ.श्री आर्जवसागरजी साथ में ब्र.जिनेश जी व सौधर्मइन्द्र।

पाण्डल में बनी वेदी स्थित प्रतिमाओं पर दीक्षा संस्कार करते हुए मुनिश्री भाग्यसागरजी।

तीर्थंकर प्रतिमाओं पर अंकन्यास करते हुए संघस्थ मुनिश्री नमितसागरजी।

तमिलनाडु से आयी भ. आदिनाथ की प्रतिमा पर संस्कार विधि करते हुए आ.श्री आर्जवसागरजी।

रजि. क्रं. MPHIN/2007/27127

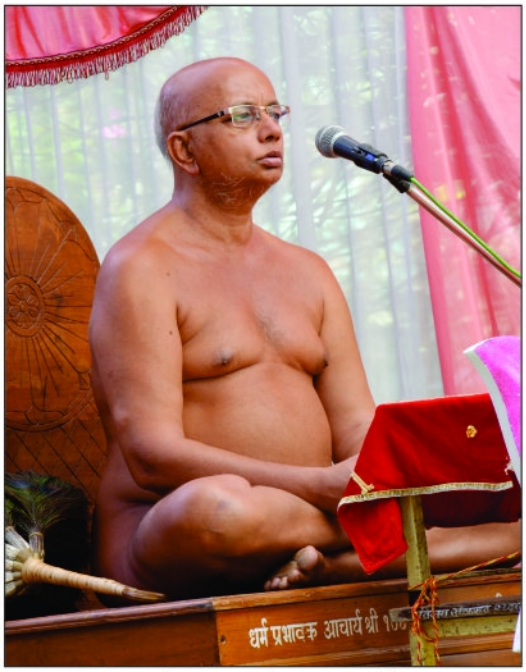

भ. आदिनाथ जयंती पर प्रवचन देते हुए
आचार्यश्री आर्जवसागरजी महाराज।

दमोह काँच मंदिर में प्रवेश पर जिनदर्शन करते हुए
आचार्यश्री आर्जवसागरजी महाराज ससंघ।

दमोह काँच मंदिर के परिसर में नए पाण्डाल में भ.आदिनाथ
जयंती पर मंच पर विराजित आचार्यश्री ससंघ।

काँच मंदिर में भ. आदिनाथ जयंती के अवसर पर
ध्वजारोहण करते हुए वहाँ के भक्तगण।

भ. आदिनाथ जयंती पर आ.श्री आर्जवसागरजी के सान्निध्य
में महावीर जयंती के पोस्टर का विमोचन।

काँच मंदिर में भ. आदिनाथ जयंती पर जिनाभिषेक
करते हुए इन्द्रगण।

आचार्यश्री आर्जवसागरजी की नवधा भक्ति करते
हुए राजेश जैन 'रज्जन' सपरिवार।

स्वामी एवं प्रकाशक : श्रीमती सुषमा जैन द्वारा मुद्रक : पवन कुमार जैन द्वारा पारस प्रिन्टर्स, 207/4, सांईबाबा काम्पलेक्स, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल से मुद्रित एवं एमआईजी-8/4, गीतांजली काम्पलेक्स, कोटरा सुल्तानाबाद, भोपाल (म.प्र.) से प्रकाशित।
सम्पादक - श्रीपाल जैन 'दिवा', एल-75, केशर कुंज, हर्षवर्धन नगर, भोपाल-3 (म.प्र.)

पञ्चकल्याणक महामहोत्सव में सौधर्मइन्द्र द्वारा श्रीजी का अभिषेक (जलधारा)।

दमोह नगर के विशाल पाण्डाल में आ. आर्जवसागरजी के प्रवचन सुनता हुआ जनसमूह।

पञ्चकल्याणक में आ. आर्जवसागरजी का आशीष लेते हुए दि. जैन पंचायत, दमोह के अध्यक्ष सुधीर जैन।

पञ्चकल्याणक में पधारे लोकेश जैन का सम्मान करते हुए संयोजक रूपचंदजी, दमोह।

पञ्चकल्याणक में भगवान की माता की सेवा हेतु उपस्थित हुई अष्टकुमारी देवियाँ।

पञ्चकल्याणक महोत्सव 2017 में जनसमूह को आशीष देते हुए आ.श्री आर्जवसागरजी।

जन्मकल्याणक के समय सौधर्मइन्द्र शचिदेवी से जिनबालक की याचना करते हुए।

जिनबालक की प्राप्ति पर सहस्रनयन की भावना से निहारते हुए सौधर्मइन्द्र।

तीर्थंकर बालक को ऐरावत हाथी पर बिठाकर मेरु पर्वत पर ले जाते हुए इन्द्र।

शोभा यात्रा में बग्गियों पर बैठकर जाते हुए इन्द्राणियों के साथ इन्द्रगण।

पञ्चकल्याणक की शोभायात्रा में बग्गी पर सवार ईशानइन्द्र अपनी इन्द्राणी के साथ।

जन्माभिषेक के समय तीर्थंकर बालक का अभिषेक करते हुए जिनेश जैन, दमोह (भोपाल)।

पाण्डुकशिला पर क्षीरोदधि के जल से अभिषेक करते हुए चन्द्रकुमार जैन (न्यूकिरण), दमोह।

पञ्चकल्याणक महामहोत्सव में बाहुबली के रूप में राजेश जैन (रज्जन) सपत्नीक, दमोह।

पञ्चकल्याणक महामहोत्सव में भरत चक्रवर्ती के रूप में पंकज जैन सपत्नीक, दमोह।

दमोह पञ्चकल्याणक में तीर्थंकर के वैराग्य के समय त्याग व वैराग्य की सराहना करने आये लौकांतिक देवगण।

पञ्चकल्याणक के दौरान 'अहिंसा महावीर चक्र' अवार्ड से सम्मानित होते हुए सुभाष जैन (दाऊ) ग्वालियर (म.प्र.)।

दमोह के पञ्चकल्याणक में 'धर्ममहावीर चक्र' अवार्ड से सम्मानित होते हुए एम. देवदास तमिलनाडु।

तीर्थंकरकुमार के दीक्षावन प्रस्थान पर मरुदेवी माता एवं नाभिराय आदि का वियोग।

तीर्थंकर कुमार स्वर्गिक पालकी में बैठकर दीक्षा वन की ओर जाते हुए।

विधिनायक प्रतिमा पर दीक्षा के संस्कार देते हुए आ.श्री आर्जवसागरजी साथ में ब्र.जिनेश जी व सौधर्मइन्द्र।

पाण्डल में बनी वेदी स्थित प्रतिमाओं पर दीक्षा संस्कार करते हुए मुनिश्री भाग्यसागरजी।

तीर्थंकर प्रतिमाओं पर अंकन्यास करते हुए संघस्थ मुनिश्री नमितसागरजी।

तमिलनाडु से आयी भ. आदिनाथ की प्रतिमा पर संस्कार विधि करते हुए आ.श्री आर्जवसागरजी।

पञ्चकल्याणक में 62 जिन प्रतिमाओं पर मंत्र संस्कार करते हुए आ.श्री आर्जवसागरजी।

दमोह पञ्चकल्याणक के समवसरण में विराजमान आ.श्री आर्जवसागरजी ससंघ।

रत्न प्रतिमाएँ व चांदी के उपकरण प्रदाता पवन जैन, जयपुर का सम्मान करते हुए समिति के पदाधिकारीगण।

समिति के सदस्यों द्वारा रत्नों की प्रतिमाओं आदि के प्रदाता हिमांशु जैन, गुड़गांव का सम्मान।

भाव विज्ञान पत्रिका के सम्पादक डॉ. अजित जैन, भोपाल का सम्मान करते हुए संयोजक रूपचंदजी जैन, दमोह।

तीर्थंकर मुनीश्वर के लिए इक्षुरस का आहार प्रदान करते हुए राजा श्रेयांस के रूप में महेशजी बड़कुल, दमोह।

भ.बाहुबली पर मंत्र संस्कार करते हुए आ.श्री आर्जवसागरजी एवं साथ में मूर्ति प्रदाता प्रवीण जैन (पप्पू), दमोह।

आशीर्वाद व प्रेरणा
संत शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज
से दीक्षित
आचार्यश्री 108 आर्जवसागर जी महाराज ।

रजिस्ट्रेशन क्रं. MPHIN/2007/27127

त्रैमासिक
भाव विज्ञान
(BHAV VIGYAN)

वर्ष-दस
अंक - उन्तालीस

● परामर्शदाता ●
पंडित मूलचंद लुहाड़िया
किशनगढ़ (राजस्थान) मोबा.: 9352088800
● सम्पादक ●
श्रीपाल जैन 'दिवा'
शाकाहार सदन, एल.आई.जी.-75, केशर कुंज,
हर्षवर्धन नगर, भोपाल-462003 (म.प्र.)
फोन : 4221458
● प्रबंध सम्पादक ●
डॉ. सुधीर जैन, प्राध्यापक
85, डी.के. काटेज, ई-8 एक्सटेंशन, अरेरा
कालोनी, भोपाल मो. 9425011357
● सम्पादक मंडल ●
पं. जय कुमार 'निशांत', टीकमगढ़ (म.प्र.)
डॉ. अजित कुमार जैन, भोपाल (म.प्र.)
डॉ. संजय जैन, पथरिया, दमोह (म.प्र.)
डॉ. श्रीमती अल्पना जैन(मोदी), ग्वालियर(म.प्र.)
इंजी. महेन्द्र कुमार जैन, भोपाल (म.प्र.)
श्री सुनील वेजीटेरियन, दमोह (म.प्र.)
● कविता संकलन ●
पं. लालचंद जैन 'राकेश', भोपाल
● प्रकाशक ●
श्रीमती सुषमा जैन धर्मपत्नी डॉ. अजित जैन
MIG-8/4, गीतांजली काम्प्लैक्स, कोटरा,
भोपाल
फोन : 0755-4902433, 9425601161
email : bhav.vigyan@yahoo.co.in

● आजीवन सदस्यता शुल्क ●

पुण्यार्जक विशेषांक संरक्षक	:	24,500
परम संरक्षक	:	21,000
पुण्यार्जक संरक्षक	:	18,000
सम्मानीय संरक्षक	:	11,000
संरक्षक	:	5,100
विशेष सदस्य	:	3100
आजीवन (स्थायी)सदस्यता	:	1500

कृपया सदस्यता शुल्क प्रकाशक के एवं रचनाएँ प्रबंध सम्पादक के पते पर भेजें।

पल्लव दर्शिका

विषय वस्तु एवं लेखक — पृष्ठ

1. प्रवचन प्रमेय – आचार्यश्री विद्यासागरजी महाराज 02
2. सत्पथ-दर्पण –स्व.पं. अजित कुमार शास्त्री 15
3. मध्यलोक में भोगभूमियाँ : एक अनुचिन्तन – डॉ. जयकुमार जैन 21
4. चाय कॉफी से मांगे माफी 26
5. पारसचन्द से बने आर्जवसागर – आर्यिकारत्न श्री प्रतिभामति माताजी 27
6. श्री आर्जवसागराष्ट्कम् – आर्यिकारत्न श्री प्रतिभामति माताजी 30
7. विज्ञान एवं विचार में आमंत्रण धरती बचाना है तो क्या जीवन भी बचाना होगा? – अखिलेश आर्येन्दु 31
8. समाधान –हनुमान सिंह गुर्जर 34
9. वीर का आदर्श –वासुदेवशरण अग्रवाल 34
10. समाचार 35
11. प्रश्नोत्तरी

लेखक एवं विचारों से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।
भाव विज्ञान से संबंधित समस्त निर्णयों/न्यायों के लिए न्याय क्षेत्र भोपाल ही मान्य होगा।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॐ नमः सिद्धेभ्यः

प्रवचन प्रमेय

गतांक से आगे..... **-आचार्यश्री विद्यासागर जी महाराज**

नमः श्रीवर्धमानाय निर्धूतकलिलात्मने।
सालोकानां त्रिलोकानां यदविद्या दर्पणायते ॥(रत्नकरण्डश्रावकाचार)

संसारी प्राणी जन्म को अच्छा मानता है और मरण को बुरा। इसलिए हम पहले मरण को समझ लें। जन्म के बारे में मध्याह्न में समझना अच्छा होगा। अभी का जो समय है उसमें पहले मरण को समझ लेते हैं फिर उसके उपरान्त स्वाध्याय और दान के विषय में भी कुछ समझने का प्रयास करेंगे।

पहले तो, मरण किसका होता है? मरण क्या अनिवार्य है और मरण का जीवन के साथ क्या सम्बन्ध है? इसको समझ लें। संसार में ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है, जो मरण से न डरता हो, जबकि मरण एक अनिवार्य घटना है। फिर डरना क्यों? जहाँ जीवन भी एक अनिवार्य घटना और मरण भी। तो एक पहलू से प्रेम और एक पहलू को देखकर क्षोभ क्यों? इसमें क्या रहस्य है? अज्ञान! अज्ञान के कारण ही संसारी प्राणी मृत्यु को नहीं चाहता और मृत्यु से बच भी नहीं पाता। अभी-अभी यहाँ जन्म महोत्सव मनाया जा रहा था। लेकिन जहाँ से निकल करके आ रहा है, वहाँ पर मरणकृत शोक छाया होगा। यह मात्र अज्ञान के खेल हैं। तो मरण क्या है? मरण, जीवन के अभाव का नाम है। जैसे- दीपक जल रहा है। वायु का एक झोका आ जाता है तो दीपक बुझने लगता है, भले ही उसमें तेल और बाती भी अभी जमाई हो, तब भी वह बुझ जाता है। इसी प्रकार आयुकर्म का क्षय होना अनिवार्य है। जब आयुकर्म का क्षय होना अनिवार्य है तो हम इसे समझ लें कि आयु क्या है? आयु एक प्राण है। दश प्राण होते हैं उनमें से एक आयु भी है ''दशप्राणैर्जीवति इति जीवः'' दश प्राण इसलिए कह रहा हूँ कि यहाँ पर मनुष्य की विवक्षा रखी गई है। अर्थात् जो दश प्राणों से जीता था वह जीव है, जो अब भी जी रहा है वह जीव है तथा जो आगे भी जियेगा, वह जीव है। ''अजीवत् जीवति जीविष्यति इति वा जीवाः प्राणिनः''। इन प्राणों का अभाव होना ही मरण है। आयु का अभाव होना ही मरण है। आयुकर्म का क्षय होना ही मृत्यु है। संसारी प्राणी मरण से भयभीत है अतः समझ सके कि वह घटना क्या है? आयु का क्षय- अभाव क्यों होता है? जिस अभाव को वह नहीं चाहता तो वह क्यों होता है? जो हम चाहते हैं वह क्यों नहीं होता? अनचाहा होता है तो उसके ऊपर हमारा अधिकार क्यों नहीं?

सन्तों का कहना है, हमें उस ओर नहीं देखना है जहाँ सूर्य का प्रवास चलता है, यात्रा चलती है अविरल रूप से 12 घण्टे। वह चलती ही रहती है। कभी रुकती नहीं, यह नियम है। कभी किसी को पीछे मुड़कर देखता नहीं और ना ही किसी की प्रतीक्षा करता है सूर्य। उसका यह कार्य है। लोग इसे पसंद करें, ठीक। नहीं करें, तो भी ठीक। वह चलता ही रहता है। इसी प्रकार आयुकर्म का खेल है। वह निरन्तर क्षय को प्राप्त होता रहता है। आयुकर्म क्या है? आयु आठ कर्मों का खेल है। वह निरन्तर क्षय को प्राप्त होता रहता है। **आयुकर्म क्या है? आयु, आठ कर्मों में एक कर्म है, जिसका सम्बन्ध काल के साथ है लेकिन वह काल नहीं है।** हमारा सम्बन्ध कर्म के साथ हुआ, न कि काल के साथ। हाँ! कर्म का सम्बन्ध कितने काल तक रहेगा, उसमें कितनी

शक्ति है, कितने-किस प्रकार के उसमें परिवर्तन हो सकते हैं और कब, यह सब काल के माध्यम से जानते हैं।

''आयु'' कहते ही हमारी दृष्टि काल की ओर चली जाती है, लेकिन यह ठीक नहीं। क्योंकि दृष्टि से ही सृष्टि का निर्माण हुआ करता है। जिसके साथ आपका सम्बन्ध है उसी को देखिये। काल कोई वस्तु नहीं हैं। मैंने कल कहा भी था कि चेतनाएं तीन होती हैं, कर्मचेतना, कर्मफलचेतना और ज्ञान चेतना। जीव का सम्बन्ध इन चेतनाओं के साथ हुआ करता है, अनुभव के साथ हुआ करता है, अन्य कोई चौथी काल चेतना नहीं है। अत: काल के साथ जीव का कोई भी सीधा सम्बन्ध नहीं है। यह बात अलग है कि काल, कर्म को नापने का माध्यम है। जैसे- ज्वर को थर्मामीटर के माध्यम से नापा जाता है। ज्वर आते ही थर्मामीटर की याद आती है और उसको भिन्न-भिन्न अंगों पर लगाकर देख लिया जाता है। ज्वर थर्मामीटर को नहीं आता अर्थात् थर्मामीटर के अनुरूप भी नहीं आता, क्योंकि एक तो बुखार आने के उपरान्त ही उसका प्रयोग किया जाता है, आवश्यकता पड़ती है। दूसरी, पहले तो थर्मामीटर नहीं थे। मात्र नाड़ी के माध्यम से जान लेते थे। आज थर्मामीटर भी 94 के नीचे काम नहीं करता और 107-108 के ऊपर भी नहीं। कितनी गर्मी है, पता नहीं चलता। एक हड्डी का बुखार हुआ करता है, वह थर्मामीटर में आता ही नहीं, फिर भी ज्ञान का विषय तो बनता ही है। अर्थ यह हुआ थर्मामीटर होने से बुखार नहीं आता। वह तो मात्र नापने में एक यन्त्र का काम करता है। उस यन्त्र में हम नहीं घुसे, और न उसके बारे में ज्यादा सोचें, सिर्फ इसके कि, बुखार कितना आया? कब तक रहेगा? जायेगा कि नहीं? इसके उपरान्त इलाज प्रारम्भ हो जाना चाहिए।

इसी तरह आयु कहते ही हमारे दिमाग में काल की चिन्ता नहीं होनी चाहिए, कि अब कितना काल रह गया, क्या पता? काल रहता नहीं, काल टिकता नहीं, काल जाता नहीं, काल तो अपने- आप में है। फिर क्या वस्तु है काल? इसको हम आगम के माध्यम से या अनुमान के माध्यम से जान सकते हैं। भगवान् की वाणी द्वारा जो उपदिष्ट हुआ है उस पर श्रद्धान कर समझ सकते हैं। ''काल कोई जानकार वस्तु नहीं है, जो हमें जान सके। हम ही उसे जानने की क्षमता रखते हैं'' लेकिन वर्तमान में नहीं है, यह बात अलग है। वह केवल श्रद्धान का विषय है। भगवान् ने जो कहा, उसको हम मानते चले जाते हैं। काल के माध्यम से अपने-आपको आंक सकते हैं। काल हमारे परिणमन का ज्ञापक है और इन परिणमनों के लिये सहायक काल है। काल निष्क्रिय है, उसके पास पैर नहीं, हाथ नहीं, ज्ञान नहीं। उसके पास अपना अस्तित्त्व है, अपना गुण-धर्म और अपना स्वभाव है। इस काल के बिना आयुकर्म क्या करता है? नियम से अपने परिणामों के अनुरूप परिणमन करता चला जाता है। उसकी कई अवस्थाएं हुआ करती हैं, जिनका उल्लेख धवला, जयधवला एवं महाबन्ध में किया है।

''**आयुक्खयेण मरणं**'' जैसे दीपक के तेल और बाती का समाप्त होना उसकी मृत्यु है, अवसान है। उसी प्रकार संसारी प्राणी के घट में भरा हुआ आयुकर्म समाप्त हो जाना। फिर चाहे वह मोटा-ताजा हो, हृष्ट-पुष्ट हो या पहलवान भी क्यों न हो, बाहर से बिल्कुल लाल-सुर्ख टमाटर के समान दीखने वाला हो, उसका भी अवसान बहुत जल्दी हो जाता है, क्योंकि भीतर आयुकर्म समाप्त हो गया।

एक व्यक्ति ने कहा था- महाराज जी! आजकल तो जमाना पलट रहा है। वैज्ञानिक, वस्तु की स्थायी सुरक्षा का प्रबन्ध करने जा रहे हैं, बस चन्द दिनों में उस पर कर लेंगे। कोई भी वस्तु को मिटने नहीं देंगे। यदि

मिटनी भी है तो समय-पूर्व नहीं मिट सकती। जैसे शास्त्रों में जहाँ कहीं भी मर्यादा सम्बन्धी व्यवस्था की गई है, कि आटे की सीमा गर्मी में पाँच दिन, ठण्ड में सात दिन और वर्षा में तीन दिन। लेकिन अब एक ऐसा यंत्र विकसित हो गया है। (बन गया है) कि उसमें आटा रखने से उम्र ज्यादा पाता है, उसकी सीमा अधिक दिन तक की हो जाती है। तथा आज जो बेमौसमी फल बगैरह मिल रहे हैं, वह सभी उसी की देन है। अब दीवाली में भी आम खा सकते हैं। आमतौर पर दीपावली में आम नहीं आ सकते, लेकिन फ्रिज में रख करके बे-मौसम में खाने के काम आते हैं।... बात बिल्कुल ठीक है कि आप एक फल जो कि पेड़ से तोड़ा गया है, रेफ्रिजिरेटर में रख दीजिए, लेकिन उसके अन्दर भी काल विद्यमान रहता है और वह परिणमन करने में सहायक होता है, क्योंकि परिणमन करना वस्तु का स्वभाव है।

''वर्तनापरिणामक्रियापरत्वापरत्वे च कालस्य''

कालद्रव्य का माध्यम बना करके प्रत्येक वस्तु का परिणमन निरन्तर चलता रहता है। यदि उस आम को 8-10 दिन के बाद, जब निकाल कर खायेंगे, तब रूप में, गन्ध में, रस में, वर्ण में और स्पर्श में नियम से अन्तर मिलेगा। यह बात अलग है कि इन्द्रियों के ''अण्डर'' में हुआ व्यक्ति उस रस के, रूप के और गन्ध के बारे में पहचान न कर पाये, लेकिन उनमें परिवर्तन तो प्रति समय होता जा रहा है। यही आम का मरण है। रूप का, रस का, गन्ध का, स्पर्श का और वर्ण का मरण है। प्रत्येक का मरण है। ध्यान रखिए! मात्र मरण का कभी भी मरण नहीं होता। **कोई अजर-अमर है तो वह मरण ही है। कोई नश्वर है तो जीवन है। आयु ही जीवन है और उसका क्षय होना नश्वरता है, मरण है।**

कर्मों का क्षय करना है लेकिन, सुनिये! आयुकर्म को छोड़कर शेष सात कर्मों की निर्जरा बताई गयी है आगम में। कर्म मात्र हमारे लिए बैरी नहीं।'' आठ कर्मों की निर्जरा के लिए नहीं लिखा, किन्तु सात को लिखा है, आयुकर्म की निर्जरा नहीं की जाती है। जो आयुकर्म की निर्जरा में उद्यमशील है उसे ''हिंसक'' यह संज्ञा दी गई है।

जो आयुकर्म को नष्ट करने के लिये उद्यत है, कि ''किसी भी प्रकार से जल्दी-जल्दी जीवन समाप्त हो जाए'' इस प्रकार की धारणा वाला व्यक्ति, ना जीवन का रहस्य समझ पा रहा है, ना मृत्यु का। कर्म-सिद्धान्त के रहस्य को समझने के लिए, अध्ययन करने के लिए, यदि एक प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति भी जीवन खपा दे, तो भी मैं समझता हूँ अधूरा ही रहेगा। फिर 10 दिन के शिविरों में कर्म के सम्बन्ध में कुछ भी नही समझ पायेंगे। कर्म हैं लेकिन उनके भी असंख्यातलोकप्रमाण भेद हैं। इनका सम्बन्ध हमारी आत्मा के साथ है। इनका फल भी आत्मा को भोगना होता है और इनके करने का श्रेय भी आत्मा को है अत: कर्त्ता कैसे बना? अपना परिणमन करता हुआ अन्य भावों को पैदा करने में योगदान कैसे देता है? इन सबका हिसाब-किताब बहुत गूढ़ है। अत: इनके रहस्य को समझें।

आयुकर्म हमारे लिए प्राण है। प्राण-मतलब जिसके माध्यम से हमारा वर्तमान जीवन चल रहा है। वह पेट्रोलियम का काम करता है। आपको सम्मेदशिखर जी की यात्रा करनी है। आपने एक मोटर की। उसमें एक पेट्रोल टैंक भी रहता है। वह क्या करता है? वह मोटर को चलाती है। और यात्री ऐशोआराम के साथ यात्रा सम्पन्न

कर लेता है। अब यदि पेट्रोल टैंक फट जाय तो क्या होगा? गाड़ी तो बहुत बढ़िया है, ब्रेक भी ठीक है। ड्राइवर भी ठीक है-शराब भी पीकर के नहीं बैठा, आराम के साथ- यन्त्र देख-देखकर वह गाड़ी को चला रहा है। फिर भी पेट्रोल समाप्त हो जाने से आगे नहीं चलेगी वह और आप भी नहीं जा सकेंगे। मतलब पेट्रोल समाप्त, गाड़ी बन्द, यात्रा समाप्त। पेट्रोल क्या है यही तो उस गाड़ी का आयुकर्म है।

आयुकर्म के बारे में बहुत समझाना है, बहुत शान्ति से समझना है। उसकी उदीरणा-अपकर्षण-उत्कर्षण आदि-आदि जो भंग/करण हैं वह बहुत कुछ सोचने के विषय हैं, चिन्तनीय हैं। जीवन तो आप चाहते हैं, लेकिन जीवन की सामग्री के बारे में आप सोचते ही नहीं हैं। इसी से आपका पतन हो रहा है। मंजिल तक नहीं पहुँच पा रहे हैं। कामना पूर्ण नहीं हो पा रही है। आयुकर्म आत्मा के साथ बन्ध को प्राप्त होता है तो भावों के द्वारा ही स्थितियां और अनुभाग के साथ वर्गणाएं कर्म के रूप में परिणत हो कर आ जाती हैं। ऐसा पेट्रोलियम आपके साथ विद्यमान है तो जो काल के ऊपर आधारित नहीं, किन्तु अपना परिणमन वह पृथक रखता है। जैसे दो कैरोसिन की गैसबत्ती हैं। वे तेल के माध्यम से जलती हैं। रात में आपको कुछ काम करना था अत: दुकान से किराये पर ले आये। दुकानदार से पूछा- यह कब तक काम देगी? 12 घण्टे तक। अच्छी बात है। अब उन्हें लाकर काम चालू कर दिया। दिन डूबते ही आपने बत्तियां जला दीं। लेकिन चार घण्टे के उपरान्त एक बन्द हो गयी, बुझ गई। तो यह दूसरी के सहारे काम करता रहा, रात के बारह बजे तक। सुबह जाकर के दुकानदार को कहा- मैं तो एक गैसबत्ती का किराया दूंगा एक का नहीं। क्यों भैय्या क्या बात है? एक बत्ती ने काम नहीं दिया, हो सकता है आपने इस गैसबत्ती में कैरोसिन कम डाला हो। मालिक ने कहा- नहीं जी, ऐसी बात नहीं है। मैंने नापतोल कर तेल और हवा भर दी थी, फिर इसने काम नहीं किया तो उसमें कुछ गड़बड़ी होनी चाहिए। उसने देखा कि एक सुराख हो गया है तेल टेंक में। यानि बर्नर के माध्यम से तो तेल जाता था, वह तो प्रकाश के लिए कारण बनता है किन्तु जो एक छिद्र हो गया है वह बिना प्रकाश दिये कैरोसिन को निकाल देता है। इसीलिये यह चार घण्टे में समाप्त हो गया। जिसे 8 घण्टे और चलना था, वह पहले ही समाप्त हो गया। हम पूछना चाहते हैं कि क्या तेल 12 घण्टे के लिए डाला गया था या चार घण्टे के लिए? तेल तो 12 घण्टे का डाला, किन्तु छिद्र होने से बीच में ही समाप्त हो गया। अपनी सीमा तक नहीं पहुंच सका। इसी प्रकार आयुकर्म है, वह अपनी स्थिति को ले करके बंधता है लेकिन बीच में उदीरणा से स्थिति पूर्ण किये बिना ही समाप्त हो जाता है। इसमें कर्मों का कोई आधारभूत जो नोकर्म शरीररूपी गैसबत्ती उसकी खराबी है। इसकी खराबी का कारण भीतरी कर्मों का दोष नहीं देना चाहिये। कर्म जिस समय बंध को प्राप्त होता है तो चार प्रकार से बंध हुआ करता है- प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग।

प्रकृतिबन्ध- स्वभाव को इंगित करता है। प्रदेशबन्ध- कर्मवर्गणाओं की गणना करता है। स्थिति बन्ध- काल को बताता है कि इतने समय तक यहाँ रहूँगा जबकि काल द्रव्य से उसका कोई सम्बन्ध नहीं, मात्र अपनी क्षमता को काल के माध्यम से घोषित कर रहा है। और अनुभाग बन्ध-अपने परिणामों को बताने वाला होता है। यह चार प्रकार के बन्ध एक ही समय में हुआ करते हैं। ऐसा नहीं है कि पहले प्रकृति बन्ध हो फिर प्रदेश बन्ध या पहले स्थिति बन्ध फिर अनुभाग बन्ध। पहले कुछ प्रदेश आ जाए फिर शेष तीन प्रकार का बन्ध हो, ऐसा भी नहीं

जिस समय लेश्याकृत मध्यम परिणाम होते हैं वह समय आयुकर्म के बन्ध के योग्य माना गया है, ना कि अन्य परिणामों का। अब समझ लीजिए- किसी ने अस्सी साल की आयु की स्थिति प्राप्त की अर्थात् 80 वर्ष तक, वह कर्म टिकेगा, इससे आगे नहीं। लेकिन यदि बन्ध के बाद परिणामों में विशुद्धि आ गई तो स्थिति बढ़ जाने को उत्कर्षण कहते हैं और यदि परिणामों में अध:पतन/ अवपतन/संक्लेश हो गया तो स्थिति और घट गई, यह अपकर्षण है। ये दोनों ही कारण अगली आयुकर्म की अपेक्षा से इस जीवन में बन सकते हैं। जिसका उदय चल रहा है, जैसे- मनुष्यायु तो इसमें ना उत्कर्षण संभव है ना अपकर्षण। इसमें तो उदीरणा संभव है। जितने भी निषेक, कर्मवर्गणाएं हमें प्राप्त हो गई हैं, उनका समय से पूर्व अभाव अर्थात् उदीरणा संभव है। इसी का नाम आचार्यों ने धवला में 'कदलीघातमरण' कहा है। कदलीघातमरण यानि केले का पेड़ जो कि बिना मौत के मार दिया जाता है। क्योंकि वह ज्यों ही फल दे देता है, त्यों ही किसान लोग उसे काट देते हैं, कारण कि उसमें दुबारा फल नहीं आता। इसलिए ताजा रहते हुए भी उसको समाप्त कर देते हैं। इसी प्रकार बाहरी निमित्त को लेकर आयुकर्म की उदीरणा होती है।

आयुकर्म की स्थिति और मरण का काल, ये दोनों ही समान अधिकरण में नहीं होते हैं। अर्थ यह हुआ कि स्थिति को पूरा किये बिना ही वे सारे के सारे कर्म बिखर जाते हैं। कर्म-कार्मण शरीर का आधार होता है और कार्मण शरीर-नोकर्म का। ज्यों ही नोकर्म समाप्त हो गया, त्यों ही कार्मण शरीर की गति प्रारम्भ हो जाती है। एक आयुकर्म का अवसान हो जाता है। पूरी स्थिति किये बिना ही वीरसेन स्वामी का कहना है यदि ''जिसकी 25 वर्ष की उम्र में मृत्यु हो गई तो उसकी उम्र 25 वर्ष की ही थी'' ऐसा जो कहता है वह एक प्रकार से कर्म-सिद्धान्त का ज्ञान नहीं रखता। उन्होंने कहा है कि आयुकर्म का क्षय और उसकी स्थिति का पूर्ण होना एक समयवर्ती नहीं है। अर्थात् उस व्यक्ति की उम्र अभी भी 55 वर्ष शेष थी, जिसको पूर्ण किये बिना ही उदीरणा के द्वारा अकालमरण को प्राप्त कर लेता है।

अकालमरण का मतलब यह कदापि नहीं है, कि वहाँ पर कोई काल नहीं था। अकालमरण का अर्थ वही है, जो कदलीघातमरण का और जो स्थिति को पूर्ण कर मरता है वह सकालमरण का अर्थ है। इस अकालमरण की अपेक्षा या उदीरणा मरण की अपेक्षा से भी भगवान् के ज्ञान में विशेषता झलकती है। वह क्या विशेषता है? भगवान् ने मृत्यु को देखा और साथ-साथ उसको अकालमरण के द्वारा देखा।

अकालमरण का अर्थ ऐसा नहीं लेना चाहिए जैसा कि कुछ लोग लेते हैं। वे डर की वजह से अकालमरण को ही अमान्य कर देना चाहते हैं, लेकिन ऐसा संभव नहीं है। दुनिया में एक ऐसी भी मान्यता है कि आयुकर्म तो रहा आवे और शरीर छूट जावे, तो उसे प्रेतयोनि में जाना पड़ता है और जब तक आयुपूर्ण नहीं हो जाता तब तक उसे वहीं भटकना पड़ता है। (जैसे कि आप लोग राकेट को पेट्रोल भरकर भेज देते हैं ऊपर, तो भटकता रहता है- घूमता रहता है वह)। अत: उसका श्राद्ध करो, उसकी शान्ति करो, आदि-आदि कार्य करते हैं। नहीं तो सिर पर आ जाएगा। जैसे ''स्काईलैब'' के द्वारा आप लोग डर रहे थे। उसी प्रकार वे भी डरते रहते है कि हमारे ऊपर वह भूत सवार न हो जाये। लेकिन कुन्दकुन्द भगवान् ने कहा है- ''आयुक्खयेण मरणं'' अर्थात् आयुकर्म के निषेक रहे आवें और मृत्यु हो जाए, यह संभव ही नहीं तथा आयुकर्म समाप्त हो जावे और जीवन रहा आवे, यह

भी संभव कदापि नहीं कि स्थितिबन्ध तो 80 वर्ष का था और 25 साल में ही जिसका अभाव हो गया- कदलीघातमरण हो गया, और भी कम में हो सकता है तो उतनी ही उम्र थी, ऐसा नहीं समझना चाहिए। उसकी क्षमता अधिक होती है। इसको एक अन्य उदाहरण से समझ लीजिए-

किसी एक व्यक्ति को नौकरी मिल गयी, कोई भी डिपार्टमेन्ट में। इस डिपार्टमेन्ट में नौकरी तो मिल गई। बहुत अच्छा काम मिला, लेकिन कब तक रह सकता हूँ? 50 वर्ष तक तुम रह सकते हो। अच्छी बात है। इसके बाद कुछ और भी बातें लिखाई गई और कह दिया गया कि इन शर्तों के अनुसार आप 50 वर्ष तक नौकरी कर सकते हैं। वेतन भी इतना-इतना मिलेगा, सब तय हो गया। एक दिन उसी कर्मचारी ने बदमाशी की, तो उन्होंने निकाल दिया, सस्पेण्ड कर दिया गया। अब वह कहता है कि हम तो हाईकोर्ट में नालिश करेंगे, आपने कहा था कि 50 वर्ष तक काम कर सकते हैं, फिर बीच में क्यों निकाला? यह कहाँ का न्याय है? उन्होंने कहा- हमने यह कहा था कि, हमारे जो कानून है उनके अनुसार चलोगे तो 50 वर्ष तक काम देंगे। इसका मतलब यह नहीं कि कि तुम यद्वा तद्वा करो। ''चेयर'' के ऊपर बैठ जाओ और ऊंघते रहे, काम कुछ भी न करो, मात्र वेतन के लिए हाजिरी लगा दो यह कैसे चलेगा। कानून भंग होते ही बीच में काम से हाथ धोना पड़ सकता है। यदि सज्जन है तो बात ही अलग है। इसी प्रकार आयुकर्म बंधने के उपरान्त कुछ ऐसी स्थितियां आती हैं जिनमें स्थिति को पूर्ण किये बिना ही मृत्यु को प्राप्त कर सकते हैं और नहीं भी।

इस रहस्य को समझना है कि क्या मृत्यु को हम बचा सकते हैं? प्रश्न बहुत ही विचारणीय है, तेज है, समस्याप्रद है। क्योंकि हम जानते हैं कि आयुकर्म को टाला नहीं जा सकता, रोका नहीं जा सकता, परिमाण कितना है? गिना नहीं जा सकता, फिर कैसे इसकी रक्षा करें, मृत्यु से बचें? इसी के द्वारा जीवन चल रहा है। आचार्यों ने इसके विषय में उलझन न करे सुलझी-सी बात कही है- कि कर्म के ऊपर तुम्हारा कोई अधिकार नहीं। स्वयं का भी अधिकार नहीं है। तब अन्य का क्या? कौन-सा कर्म कब और किस रूप में उदय में आ रहा है, आ जाए, इसको हम नहीं जान सकते। कोई भी रसायन ऐसा नहीं है कि जो कर्मों को रोक सके, दबा सके। वे तो अपने आप अबाधित गति से निकल रहे हैं। तब आचार्यों ने कहा कि- आयुकर्म की रक्षा तो कर नहीं सकते लेकिन आयुकर्म की जो उदीरणा हो रही है उसे रोक सकते हो। उस उदीरणा के स्रोत कौन-कौन-से हैं, तो कहा है- भयानक रोग के माध्यम से, भुखमरी से, श्वास के रोकने से, शस्त्र के प्रहार से, अति संक्लेश परिणामों से तथा विषादिक के भक्षण से, ऐसे अनेक कारण हो सकते हैं। आचार्य कुन्दकुन्ददेव ने अष्टपाहुड में भी अकालमरण के निमित्तों को लेकर एक तालिका ही दे दी है। उन जैसा विश्लेषण अन्यत्र नहीं मिलता। उन्होंने एक बात बहुत मार्के की कही है कि अनीति नाम के हेतु से भी यह संसारी प्राणी अतीतकाल में अनन्तबार अकालमरण का कवल (ग्रास) बन चुका है।

आज के इस जमाने को देखने से ऐसा लगता है कि अनीति पर कोई भी रोक-टोक नहीं है। ''अन्धेर नगरी चौपट राजा, टके सेर भाजी टके सेर खाजा''। आज कोई व्यक्ति कन्ट्रोल में नहीं है। लोकतन्त्र का जमाना और उसमें भी अनीति का बोलबाला है। अनीति राज्य कर रही है हमारे जीवन पर, फिर भी हम सम्यग्दर्शन की चर्चा कर रहे हैं। आचार्य समन्तभद्रस्वामी ने कहा है कि- जिस व्यक्ति के जीवन में बहुत आरम्भ और बहुत

परिग्रह के प्रति भीतर से पीड़ा नहीं, उस व्यक्ति को सम्यग्दर्शन की भूमिका का भी सवाल नहीं उठता। आचार्य समन्तभद्र ही नहीं और भी कई आचार्य हुए हैं, जिन्होंने अनीति का खुलकर निषेध किया है। आज जो यद्वा-तद्वा व्यापार कर रहा है, उसका सर्वप्रथम निषेध जैनाचार्यों ने किया है। उन्होंने कहा है- ''न्यायोपात्तधनं''। न्याय के साथ जो धन कमाया जाता है, वही आगे जाकर के धर्म-साधन में सहायक होगा। अन्याय के साथ जो धन कमाता है वह तीन काल में भी मुमुक्षु नहीं बन सकता। उसकी बुभुक्षा-पिपासा इतनी है कि वह तीन काल में ही अपने जीवन को सम्हाल सके, असंभव है। फिर सम्यग्दर्शन कोई आसान चीज नहीं है, सम्यग्ज्ञान कोई आसान नहीं है, सम्यक्चारित्र तो और भी लम्बी-चौड़ी बात है। सम्यग्दृष्टि का भी चारित्र होता है। आचार्य कुन्दकुन्ददेव ने सम्यक्त्वाचरण चारित्र की परिभाषा बताते हुए अष्टपाहुड में कहा है- **जिस व्यक्ति के जीवन में शासन के प्रति प्रेम नहीं अर्थात् जिनशासन के प्रति गौरव नहीं, उसके जीवन में प्रभावना होना तीन काल में संभव नहीं।**

आज हम देख रहे हैं जैनियों के यहाँ भी ऐसे-ऐसे कार्य होते चले जा रहे हैं, जिनसे कि जैनशासन को नीचा देखना पड़ता है। आप भले ही यहाँ टीनोपाल के कपड़े पहनकर आयें, अच्छे से अच्छे साफ सुथरे पहनकर आयें लेकिन वहाँ पर तो लोग कहेंगे ही कि ये जैन हैं।

एक जमाना था कि जब टोडरमल जी थे, सदासुखजी थे, जयचन्द जी थे और दौलतराम जी थे। ये सभी ऋषि-मुनि नहीं थे, पण्डित थे। परन्तु उनके जीवन में सदासुख- सादगी थी। गांधी जी ने विश्व में तहलका मचा दिया और स्वतंत्रता दिला दी। क्या पहनते थे वे, क्या रहन-सहन था उनका मालूम है? हर तरह से सादगी थी उनके जीवन में। जबकि, अब व्यक्ति ऐशोआराम में डूब रहा है। विलासता का अनुभव करने के लिए यह मनुष्य जीवन नहीं है बन्धुओ! इसमें योग और साधना की सुगन्ध आनी चाहिए। एक बार गांधी जी को पूछा गया- आप इस प्रकार से कपड़े पहनते हैं, ऐसा जीवन बिताने से क्या होगा अरे! शरीर की रक्षा के लिए तो सभी कुछ आवश्यक है? तब उन्होंने कहा- ''हमने मात्र अपने विचारों को स्वतन्त्रता देने के लिए यह संग्राम छेड़ा है।'' यहाँ जीवन के नाम पर ऐशोआराम नहीं करना है। आज देश में सबसे बड़ा संकट/ सबसे बड़ी समस्या, भूख की नहीं, प्यास की नहीं बल्कि भीतरी विचारों के परिमार्जन करने की है इसी से विश्व में त्राहि-त्राहि हो रही है। यह समस्या धर्म के अभाव से, दया के अभाव से ही है। एक दूसरे की रक्षा करने के लिए कोई तैयार ही नहीं। जो रक्षा के लिए नियुक्त किये गये, वही भक्षक बनते चले जा रहे हैं। एक-दूसरे के ऊपर जो विश्वास था, प्रेम था, वात्सल्य था, वह सब समाप्त होता चला जा रहा है। अपनी मान-प्रतिष्ठा के लिए आज ऐसे-ऐसे घृणित कार्य किये जा रहे हैं, जिनसे कि जिनशासन और देश को अपार क्षति हो रही है।

मेरे पास, आज से 2 साल पूर्व एक बन्द लिफाफा आया था, जिसमें एक कार्टून रखा था, उसमें कहा गया था कि महाराज! वनस्पति घी के नाम पर उसमें अशुद्ध पदार्थ डाले जा रहे हैं वह भी जैनियों के द्वारा। क्या आप ऐसा न करने के लिए उन्हें-उपदेश नहीं दे सकते? इस शताब्दी में ऐसे-ऐसे जघन्यतम कार्य हो रहे हैं और उसमें भी जैन सम्मिलित हैं। विश्व में वित्त की होड़ लग रही है इसीलिए क्या हम भी वित्त कमा रहे हैं? आप अवश्य ही उपदेश दीजिए। मैंने कहा- भैय्या! मैं उपदेश देने के लिए मुनि नहीं बना हूँ, फिर भी यदि आप उपदेश चाहते हैं तो सामूहिक रूप में उपदेश दे सकते हैं। किसी एक व्यक्ति को नहीं, कारण कि वह उपदेश नहीं माना जाएगा।

मुझे भी देखकर के खेद होता है कि आज जो काण्ड हो रहा है उनकी चाहे व्यापार में, बहुत आरम्भ के बारे में और चाहे बहुत परिग्रह के बारे में, कोई सीमा नहीं रही है। धन का इतना अधिक लोभ करने वाले व्यक्ति के धर्म, दया, प्रेम सुरक्षित नहीं रह सकते।

जैन शासन में जो पन्थ चलते हैं वे सागार और अनगार के हैं। अविरतसम्यग्दृष्टि का कोई पन्थ नहीं होता। अविरतसम्यग्दृष्टि तो मात्र उन दोनों पन्थों का उपासक हुआ करता है। जिसे जिन शासन के प्रति गौरव नहीं, आस्था नहीं, उसके पास चारित्र नहीं। **आचार्य कुन्दकुन्ददेव कहते हैं कि- जिसके पास सम्यक्त्वाचरण चारित्र नहीं है उसके पास सम्यग्दर्शन भी नहीं है। जिस व्यक्ति में, साधर्मी भाईयों के प्रति करुणा नहीं, वात्सल्य नहीं, कोई विनय नहीं वह मात्र सम्यग्दृष्टि होने का दम्भ भर सकता है, सम्यग्दृष्टि नहीं बन सकता।** आज अनीति के माध्यम से कई लोग मृत्यु के शिकार बनते चले जा रहे हैं। ''हार्ट-अटेक'' क्यों होता है? इसीलिए तो, कि अन्दर डर रहता है और ऊपर से शासन के करों का/टैक्सों का अपहरण करते हैं। **लेकिन यह भगवान् महावीर का दरबार है। इसमें अनीति-अन्याय के लिए कोई स्थान नहीं मिलता। यहाँ तो नीति-न्याय के अनुसार, सादगीमय जीवन से काम लेना होगा।**

सदासुखदास जी के बारे में मुझे पंक्तियां याद आ रही है। सदासुखदास जी जयपुर में रहते थे। किसी शासनाधीन विभाग में कार्य करते थे वहाँ। वर्षों काम करते रहे। एक बार सभी लोगों ने हड़ताल कर दी कि हमारे वेतन का विकास होना चाहिए। मांग पूरी भी कर दी गई। लेकिन सदासुखदास जी ने मांग ही नहीं की थी, तो मांग के अनुसार जब इनके पास ज्यादा वेतन आया तब उन्होंने कहा- ज्यादा क्यों दे दिया, कोई भूल तो नहीं हो गई? इतने ही हमारे होते हैं, इतने आपके हैं।... नहीं, नहीं, सभी के वेतन में वृद्धि हो गई है। तब सदासुखदास जी ने कहा- सबके लिए हो सकती है लेकिन मुझे आवश्यकता नहीं। क्यों-क्या बात हो गई? सभी ने लिया है तो आपको भी लेना चाहिए। उन्होंने कहा- मालिक को बता देना, मैं आठ घण्टे ही ड्यूटी कर उतना ही काम कर रहा हूँ कोई 16 घण्टे तो नहीं करने लग गया। जितना काम करता हूँ, उतना वेतन लेता हूँ। अत: उनसे कह दीजिए कि मुझे ज्यादा नहीं चाहिए। मालिक कहता है- ऐसा कौन-सा व्यक्ति है जो हड़ताल में शामिल नहीं हुआ। जाकर मेरा कह देना तो वह ले लेगा। सेवक ने कहा- भैय्या! ले लीजिए मालिक ने कहा है। नहीं, मैं नहीं ले सकता। अब मालिक ने उन्हें ही बुलाया और कहा मेरे कहने से ले लो। तब भी सदासुखदास जी ने कहा- मुझे नहीं चाहिए। फिर क्या चाहते हैं आप?- मालिक ने पूछा। ''मुझे यही चाहिए कि अब शेष जीवन का अधिक से अधिक समय जिनवाणी की सेवा में लगा सकूं। अत: मुझे आठ घण्टे की जगह चार घण्टे का काम रहे और वेतन भी आधा कर दिया जाए।'' इसको बोलते हैं मुमुक्षु और उसकी जिनवाणी के प्रति साधना-सेवा। जैसे नाम था वैसा ही काम ''सदासुख''। उन्होंने कहा- हम धन्य हैं। हमारे राज्य में इस प्रकार के व्यक्ति का रहना बहुत ही शोभास्पद है। सदासुखदास जी का जीवन कितना सादगीपूर्ण था। एक बार टीकमचन्द भागचन्द जी सोनी (जिन्होंने अजमेर के अन्दर नसिया जी का निर्माण कराया) के पास उनके द्वारा लिखे हुए पत्र मैंने स्वयं अपनी आँखों से पढ़े हैं। जब टीकमचन्द जी अपने परिवार सहित सम्मेदशिखर जी की यात्रा के लिए जाने वाले थे, उस समय सदासुखदासजी जयपुर में रहते थे, अत: कहा गया कि आपको भी सम्मेदशिखर जी की यात्रा के

लिए साथ चलने के लिए आना है। मैं सारा प्रबन्ध कर लूंगा, आपको कोई चिन्ता नहीं करना है। सारी चिन्ताएं छोड़कर चलना है। लेकिन जबाव में पण्डितजी ने लिखा- मैं नहीं आ सकता हूँ क्योंकि मैने देशाव-काशिक व्रत ले लिया है इससे हम सीमा छोड़कर नहीं जायेंगे। साथ ही मैं सल्लेखना के लिए भी प्रयास कर रहा हूँ, इसीलिए मैंने ड्यूटी भी कम कर दी है। अब मुझे आत्मकल्याण करना है। अब तो-

अन्तःक्रियाधिकरणं, तपः फलं सकलदर्शिनः स्तुवते।
तस्माद् यावद् विभवं, समाधिमरणे प्रयतितव्वयम्॥

समाधिमरण प्राप्त करने के लिए आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने कहा- यदि वृद्धावस्था आ रही है तो जल्दी-जल्दी कीजिए, जब तक वैभव अर्थात् शक्ति है शरीर में, तब तक इस ओर शक्ति लगा दीजिए अब, जिससे यह जीवन शान्त-निराकुलतामय बन जाए और आगे भी शान्ति का लाभ हो सके।

आचार्य समन्तभद्र स्वामी के रत्नकरण्डक श्रावकाचार पर जो कि मूलतः श्रावकों के लिए लिखा गया है, सदासुखदास जी ने टीका की उसे आज भी आबाल-वृद्ध सभी पढ़ते हैं। मैं तो रत्नकरण्डक को रत्नत्रय स्तुति ग्रन्थ मानता हूँ। उसमें रत्नत्रय की स्तुति के माध्यम से सच्चे देव, गुरु, शास्त्र की उपासना करता हुआ व्यक्ति, अन्त में सल्लेखना लेकर के बहुत आरम्भ, बहुत परिग्रह क्या? वह तो बहुत दूर की बात होगी, अब तो थोड़ा-सा भी परिग्रह शनि के रूप में मानकर दूर फेक देगा। उनकी कृतियां आज भी धरोहर हैं। हम उनका मूल्यांकन करने चलते हैं तो पाते हैं कि कितना अपार अनुभवमय जीवन था उनका। कितनी सादगी थी। मुनि बन जाते तो कितना उपकार कर जाते पता नहीं। भजनों में लिखते हैं कि ''वे मुनिवर कब मिल हैं उपकारी'' यानि उनके जीवन में ऐसे मुनिमहाराजों के दर्शन भी सुलभ नहीं थे। लेकिन आज उनके भजन से ऐसा लगता है कि ये भी मुनिराजों से कम नहीं थे। उनके भीतर- मन में मरण से किंचित् भी डर नहीं था। वे मरण के ऊपर महोत्सव मनाने में लगे रहे। अन्तिम समाधि, सदासुखदास जी की कैसी हुई मालूम है? उन्होंने पहले से तिथि लिख दी, कि फलां तारीख को इस समय, इस प्रकार की घटना होने वाली है। मैं कुछ भी नहीं कर सकूंगा। वही घटना, वही तिथि और वही मानव। भागचन्द सोनी को आँखों में पानी आ रहा था सुनाते-सुनाते कि इस प्रकार का उच्च आदर्शमय जीवन था सदासुखदास जी का। उन पत्रों को उन्हीं ने बताया था, जो कि एकत्रित कर रखे हैं।

एक जीवन ऊपर कहा जा चुका और एक आज का जीवन है। आज यद्वा-तद्वा आचरण कर असमय में ही मृत्यु की गोद में पहुँच रहे हैं लोग। इस आयुकर्म को अच्छी तरह से रखना है। जीवन में डर नहीं होना चाहिए, लोभ नहीं होना चाहिए।

''क्रोधलोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचिभाषणं च पंच''

जिसके जीवन में क्रोध है वह सत्य का उद्घाटन नहीं कर सकता। जो व्यक्ति पाई-पाई के लिए लोभी बन रहा है वह जिनवाणी का, सत्य का प्रचार-प्रसार नहीं कर सकता। भीरूत्व, ये क्या कहेंगे? क्या पता इसलिए पलट दो। आज कुछ, कल कुछ। अभी कुछ, रात को कुछ और सुबह कुछ। मन में कुछ, लिखना कुछ और कहना कुछ और ही। यह कुछ का कुछ, क्यों होता है। यह भीतरी दृढ़ता नहीं होने के कारण होता है। आचार्य कुन्दकुन्द, समन्तभद्र स्वामी आदि के उपासक जैनियों को आज क्या हो गया? उनके साहित्य को लेकर के हम

क्या कर रहे हैं। जिनवाणी माँ के ऊपर आज कीमत लिखी जा रही है। भगवान् के ऊपर भी कहीं कीमत लिखी क्या? नहीं लिखी। गुरुओं के ऊपर कीमत है क्या? नहीं है। फिर जिनवाणी के ऊपर कैसे-क्यों लिखी जाती है- जा रही है? जिनवाणी का भी क्या कोई मूल्य है? आज 50 साल भी नहीं हुए गुजरात में श्रीमद् रायचन्द जी हुए। जिन्होंने अगास में आश्रम खोला है। उन्होंने कहा था- जिनवाणी का कोई मूल्य नहीं होता है। अनमोल वस्तु है जिनवाणी, इसके लिए जितना भी देना पड़े कम है। वह जवाहारात की थाली लिए बैठे थे, जो भी व्यक्ति समयसार भेंट करता, उसको सारे जवाहरात दे देते थे। पर आज 5 रुपये, 10 रुपये, 25 रुपये होड़ लगी है। स्पर्धा हो रही है। क्या हो रहा है साहित्य का- जिनवाणी माँ का। बिल्कुल गलत है यह तरीका, यह विधि। जैसा-तैसा प्रकाशन करना, यद्वा-तद्वा प्रचार करना। शादियों में भी समयसार बांटा जा रहा है, जैसे कि पूड़ी बांटी जाती है। ऐसा नहीं होना चाहिए। यह अनमोल है, तब क्या प्रत्येक व्यक्ति इसको पढ़ सकता है? यद्वा-तद्वा ही पढ़ेगा। जिनवाणी की सेवा यही है कि जो सुपात्र है, उसको आप दीजिए। जो ककहरा भी नहीं जानता, उसके सामने जाकर के अपना साहित्य देंगे तो वह उसकी कीमत ही नहीं करेगा। रद्दी में बेच देगा। आज मौलिक साहित्य रद्दी में बेचा जा रहा है। हमने अपनी आँखों से देखा है कि बड़े-बड़े ग्रन्थों को बिस्तर में बांध दिया गया और कहाँ पर पटक दिया, यह आप भी जानते हैं। यह आज की स्थिति है। आज जैनियों को क्या हो गया समझ में नहीं आता? यह सादगीपूर्ण जीवन के अभाव के कारण ही हो रहा है। अनाप-शनाप व्यवसाय करके वित्त आने से रात-दिन चैन नहीं। **आज विश्व में वित्त ज्यादा होने से विद् यानि ज्ञान का अवमूल्यन होता चला जा रहा है। उसी कारण से आज जिनवाणी के प्रति आदर नहीं है, सत्य पहिचान नहीं है। पापों से भव नहीं है और सारी दुनिया भर से भय बढ़ता जा रहा है।**

मैं जयधवला का अध्ययन कर रहा था तब एक प्रसंग आया कि- जिस व्यक्ति को भयकर्म की उत्कृष्ट उदीरणा हो रही हो उस व्यक्ति के पास नियम से मिथ्यात्व रहेगा। जिस व्यक्ति को विशेष रूप से लोभ रहेगा, बहुत आरम्भ बहुत परिग्रह होगा उसके नियम से मिथ्यात्व कर्म की उदीरणा होगी। लोभ के साथ दर्शनमोहनीय का विशेष सम्बन्ध है। धवला-जयधवला-महाबन्ध पढ़ने का प्रयास करिये तब मालूम पड़ेगा कि हमारे परिणाम कब कैसे होते हैं। उन परिणामों के साथ कौन-सा परिणाम होना आवश्यक है। लोभ का यद्यपि चारित्रमोहनीय से सम्बन्ध है लेकिन वे कहते हैं कि जब अति लोभ होगा तब मिथ्यात्व कर्म की उदीरणा हुए बिना नहीं रहेगी। इसलिए आप यदि स्वयं को तथा दूसरों को- दुनिया को सम्यग्दर्शन से सहित देखना चाहते हैं तो सर्वप्रथम बहुत आरम्भ, बहुत परिग्रह छोड़ दीजिये। वैसे स्वाध्याय ज्यादा आवश्यक नहीं जितना आरम्भ-परिग्रह का त्याग। बहुत से आचार्यों ने स्वाध्याय के लिए जोर दिया पर ध्यान रखिये यह मुनियों को भी आवश्यक के रूप में नहीं है। स्वाध्याय 28 मूलगुणों में नहीं है। स्वाध्याय को तप के अन्तर्गत गिना गया है। आज केवल स्वाध्याय का, स्वाध्याय के द्वारा अनेक प्रकार की भीतरी वासनाओं को पूर्ण करने के लिए प्रचार-प्रसार किया जा रहा है जो कि बिल्कुल आगम विरुद्ध है। श्रावकों को भी आवश्यक नहीं बताया गया स्वाध्याय। ना धवला में ना जयधवला में, न महाबन्ध में, न रत्करण्डकादि श्रावकाचारों में आवश्यक बताया है। फिर यह प्रवाह में कैसे आ गया? मुझे मालूम नहीं। लेकिन इसके उपरान्त भी कह सकता हूँ कि मान लीजिए श्रावकों के षट्कर्मों में लिखा गया, तो पहले यह ध्यान रखिये कि षट्कर्म किसके होते हैं। आचार्यों ने कहा है- अहिंसादि

व्रत, चाहे अणुव्रत हो या महाव्रत उसकी सुरक्षा के लिए उन श्रावकों-मुनियों के लिए जीवन में छह आवश्यक कर्म बताये गये हैं। जैसे खेती की रक्षा बाड़ी के माध्यम से होती है, उसी प्रकार आवश्यकों को जानना।

अब केवल स्वाध्याय-स्वाध्याय को करने-कहने की बजाय अपने जीवन से तामसी प्रवृत्तियों को कम करो, सत्य रखो, समता रखो, वात्सल्य रखो, प्रेम रखो और जीवन के प्रति गौरव रखो। हमारी कौन-सी संस्कृति है इस बात का ध्यान रखो, हम जैन हैं। जैन होने के नाते अपनी वृत्तियों को संयमित रखो।

जैन कहते ही पहले अदालतों से छुट्टी मिल जाती थी। लेकिन आज जैन कहने की हिम्मत भी नहीं हो रही है। अखबारों में छपे समाचारों को देखकर बहुत ही दु:ख होता है कि आखिर हम भी तो उसी कोटि में माने जायेंगे/आ जायेंगे। वैसे साधु किसी संप्रदाय के नहीं होते, साधु तो विश्व का होता है। फिर भी हमारे साथ ''जिन'' एक ऐसा शब्द लगा है, वह उन भगवान् को इंगित करता है, जो राग-द्वेष नहीं करते, विषय-कषाय से रहित होते हैं, आरम्भ-परिग्रह से रहित होते हैं, ऐसे जिन भगवान् हुआ करते हैं। जिन भगवान् की उपासना करने वाले जैन माने जाते हैं, तब जैन का कार्य भी इन जैसा होना चाहिए। उनके कदमों पर चलना चाहिये, चलने की स्पर्धा होनी चाहिए, होड़ होनी चाहिए, जबकि आज हम विपरीत दिशा में जाकर अपने को जैन सिद्ध करना चाहे तो दुनिया बावली नहीं, भोली नहीं, अंधी नहीं, आंखें लगाकर देखती है। आजकल आंखे तो क्या, आंखों के ऊपर आंखें (सूक्ष्मदर्शी इत्यादि) लगाई जा रही हैं। आंखें (निगाहें) रखी जा रही हैं। कौन क्या-क्या कर रहा है, कौन क्या बोल रहा है, कौन-कैसा पलट रहा है कैसा उलट रहा है? कोई भी उसकी निगाहों से बच नहीं सकता।

सदासुखदास जी के जीवन से हमें ज्ञात होता है कि जीवन बहुत सादगी पूर्ण होना चाहिए। यह बुन्देलखण्ड है और मैं मानता हूँ कि यहाँ पर अभी हवा नहीं है या नहीं के बराबर है लेकिन आने में देर नहीं। कहीं चक्रवात आ जाये तो इसे भी अपने चक्कर में ना ले ले, बस यही मैं चाहता हूँ कामना करता हूँ। इसको शुद्ध रखने की अधिक से अधिक कोशिश की जाए। **हम भले ही शुद्ध-शुद्ध की चर्चा करते जाएं कि आत्मा शुद्ध है, हम शुद्धाम्नाय वाले हैं किन्तु भगवान् कहते हैं कि जिसका आचरण शुद्ध है उसकी आम्नाय शुद्ध है, जिसका आचरण शुद्ध नहीं उसकी आम्नाय शुद्ध नहीं। आम्नाय (परम्परा) आचार और विचार की एकता से ही चलती है।** सही शुद्ध आम्नाय तो वही है जिसमें महान् चारित्रनिष्ठ आचार्य कुन्दकुन्ददेव हुए समन्तभद्रस्वामी हुए और भी आचार्य हुए और हो रहे हैं। जिन्होंने श्रावकों के लिए अल्पबुद्धिशालियों को ग्रन्थ रचना की और जिनशासन की प्रभावना की, अपनी भावना के द्वारा। अन्त में अपने जीवन का कल्याण किया तथा हजारों-लाखों जीवों का कल्याण किया, उनका मार्ग प्रशस्त किया। अब आप वह मार्ग अक्षुण बनाये रखें, यही हमारा निवेदन है।

बन्धुओं! नीति-न्याय को नहीं भूलिये। आज की पीढ़ी, जो कि 25 से 40 वर्ष के बीच की है, यह ऐसी पीढ़ी है कि जो सम्पन्न है, और उसमें कुछ करने की कुछ पाने की सामर्थ्य है साथ ही कुछ जिज्ञासाएं व संभावनाएं भी हैं। ऐसी पीढ़ी के सामने यदि आपने अपने अनीतिमय जीवन को रखा तो उनके जीवन को पाला लग जायेगा। ''आप यदि करुणाकर, उनके भविष्यज्जीवन के बारे में करुणा करते हैं तो इस घृणित जीवन को

आज से ही छोड़ दीजिए और संकल्प कीजिए की अब हम अपने जीवन में अनीति को कोई स्थान नहीं देंगे।'' तब समझा जाएगा कि प्रतिष्ठा-महोत्सव बहुत अच्छी बात है। अनीति से धनोपार्जन नहीं होना चाहिए और अनीति के द्रव्य का (धन का) दान नहीं देना चाहिए।

दान देने का अर्थ, यह नहीं है कि हम यद्वा-तद्वा दान दें। यदि एक व्यक्ति चोरी करके दान दे तो क्या उसका दान कहलायेगा? नहीं! नहीं!! वह तो पाप का ही कारण बन जाएगा। जो आरम्भ-परिग्रह किया था उसके द्वारा पाप का ही आस्रव हुआ और पाप का ही उपभोग हुआ करता है। अत: इसको छोड़ दो!..... बिना देखे छोड़ दो। जिस प्रकार मल को छोड़ते हैं उसी प्रकार इसको भी छोड़ने के लिए कहा है, किन्तु आज तो वह नाटक जैसा होता जा रहा है। जबकि सभी बातें सारी-दुनिया जान रही है, इसलिए अब किसी भी प्रकार के साहित्य के माध्यम से प्रचार-प्रसार नहीं किया जा सकता।

आज तो हमारी नीति, हमारा न्याय, हमारा आचरण, हमारे विचार, हमारा व्यवहार जो कि समाज के सामने है, उसे देखकर ही मूल्यांकन किया जावेगा। आज की पीढ़ी इस प्रकार से अन्धानुकरण कर चलने वाली नहीं है। अनीतिपूर्वक ''गवर्मेन्ट'' के ''टेक्स'' को डुबोकर, दान देना, दान नहीं माना जाता। आचार्य उमास्वामी जी ने कहा है-

स्तेनप्रयोगतदाहृतादानविरुद्धराज्यातिक्रमहीनाधिकमानोनमानप्रतिरूपकव्यवहारा:

राज्यातिक्रम बहुत बड़ा दोष है और संभव है वह जैनियों के ऊपर कोई आपत्ति ला दे, इसीलिए सत्ता के विपरीत चलना धर्म नहीं, अधर्म माना जायेगा। ''**जो सत्ता के विपरीत चलेगा, वह महावीर भगवान् के शासन को भी कलंकित करेगा, दूषित करेगा**'', बात यद्यपि कटु है लेकिन, कटु भी सत्य हुआ करता है। जैसे- माँ को गुस्सा आ गया। क्यों आया? क्योंकि उसका लड़का उत्पथ-उन्मार्ग पर आरूढ़ हो जाता है तो उसका सब कुछ कहना, करना आवश्यक हो जाता है। इसलिए आप समझिये कि जब तक भीतर आत्मा के परिणाम उज्जवल नहीं होंगे, हमारा आचार-विचार उज्ज्वल नहीं रहेगा, तब तक हमारा सम्बन्ध महावीर भगवान् से नहीं होगा। कुन्दकुन्द के साथ नहीं होगा। समन्तभद्र के साथ नहीं होगा। इतना ही क्या? आप लोग सुनते ही हैं- जब पिताजी अवसान के निकट होते हैं, तब बेटा को बुलाते हैं। क्या आज्ञा है बाबूजी! और कोई आज्ञा नहीं। बस यही, कि जब तक आज्ञा का उल्लंघन नहीं करेगा तब तक ही मेरा बेटा है। देख! तेरे लिए ही सब कुछ किया- दुकान बना दी, मकान बना दिया। खेती-बाड़ी कर दी, सब कुछ तो कर दिया, अब कोई आवश्यकता नहीं, लेकिन यह ध्यान रखना कि इस परम्परा में दूषण न लगे। नहीं तो उसी दिन से हमारा-तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं। अब फर्म मेरी नहीं, तुम्हारी है अत: फर्म की परम्परा देखकर काम करना। आप इन सब बातों को तो करने जल्दी कटिबद्ध हो जाते हैं। लेकिन यहाँ पर आप सोचते हैं कि- ऐसा करने से कहीं हमारा जीवन ही न मिट जाये। लेकिन हमारा जीवन वस्तुत: धार्मिक जीवन है और इस दृश्य को देखकर भगवान् महावीर क्या कहते होंगे, कुन्दकुन्द भगवान् क्या कहते होंगे और समन्तभद्र महाराज क्या कहते होंगे? जरा सोचो, विचार तो करो?

हमारा साहित्य तो बहुत ही उज्ज्वल है। विश्व-भर में भी इस प्रकार का साहित्य नहीं मिल सकता,

लेकिन हमारे इस आचरण को देखकर लोग व्यंग्य में कहते हैं कि क्या यह इसी साहित्य की देन है। जो व्यक्ति इस प्रकार के साहित्य के साथ होने पर भी अनीति के साथ चलता है, झूठ बोलता है, चोरी करता है, कुशील करता है, परिग्रह की होड़ लगाता है तो उसके मुख से जो शब्द निकलेगा वह विनाशकारी होगा, कार्यकारी शब्द तीन काल में भी संभव नहीं है।

धन्य हैं वे समन्तभद्र! धन्य हैं वे कुन्दकुन्द, जिन्होंने हमारे लिए मृत्यु की भीति से दूर हटा दिया। मृत्यु क्या है? दिखा दिया। जन्म क्या है? सब कुछ बता दिया।

जीव अरु पुद्गल नाचै यामें कर्म उपाधि है

अर्थात् जीव और पुद्गल कर्म ये दोनों मिलकर यहाँ पर नाच रहे हैं। यहाँ प्रत्येक व्यक्ति नट (नाच दिखाने वाले) हैं, तो फिर देखने वाला कौन है? सारे के सारे नट ही हैं। देखने वाला कोई नहीं। अत: खुद ही अपनी आत्मा को सजग-जागृत बनायें और हम अपने नाटक को देखें, सोचें लेकिन इसमें टिके नहीं, भटकें नहीं। हम भटकते चले जा रहे हैं। राग-द्वेष-मोह-माया-मत्सर इत्यादि का स्वरूप समझें और इनको तिलांजलि दे दें। अपने एक मात्र शुद्धस्वरूप का, निरंजनस्वरूप अखण्डज्ञान का चिन्तन करें। कितना आनन्द, शक्ति और वैभव पड़ा है हमारे पास। एक महान् सेठ होकर भी संसारी-प्राणी अज्ञान और कषाय के वशीभूत होकर भिखारी के समान दर-दर, एक-एक दाने के लिए मुहताज हो रहा है। भगवान् कुन्दकुन्द को हमारे ऐसे जीवन पर दया, करुणा आती है, रोना आता है कि कैसे समझायें? माँ का रोना स्वाभाविक है, क्योंकि आखिर उसकी वह सन्तान उसके जीवन के ऊपर ही तो निर्धारित है। मैं उसको दिशा-बोध नहीं दूंगी तो कौन देगा?- इस प्रकार वह सोचती रहती है विचार करती रहती है।

बन्धुओ! अनीति के व्यसन से बचिये! वित्त की होड़ को छोड़ दीजिए और वीतरागता प्राप्त करने का एक बार प्रयत्न कीजिए। जीवन में एक घड़ी भी वीतरागता के साथ जीना बहुत मायना रखता है और हजारों वर्ष तक राग-असंयम के साथ जीना कोई मायना नहीं रखता। सिंह बनकर एक दिन जीना भी श्रेष्ठ है। किन्तु 100 साल तक चूहे बनकर जीने की कोई कीमत नहीं। सब कुछ छोड़ दीजिए-ख्याति, पूजा, लाभ, वित्त, वैभव। अपने आत्मवैभव की बात करिये।

इन पांच दिनों में 2 दिन आपके थे और 3 दिन अब हमारे होंगे। अब भगवान् हमारे हो जायेंगे। अभी तक तो वह मोह के पालना में झूले, लेकिन कल मोह को छोड़ेंगे तब कैसा माहौल? क्या वैराग्य, क्या आत्मा का स्वभाव होता है? ज्ञात होने लग जायेगा। जितना भी वैभव है सब कुछ छोड़कर निकलेंगे वे। आप लोगों के पास क्या है? षट्खण्ड का आधिपत्य भी छोड़कर चले जाते हैं। आपके पास तो छह खण्ड का भी मकान नहीं है। एक खण्ड का है, वह भी चूंता है (रिसता है) बरसात के दिनों में यदि तूफान आ जाए तो छप्पर भी उड़ जाए। इस प्रकार आप तो एक खण्ड के भी अधिपति-स्वामी नहीं हैं, एक मकान के भी स्वामी नहीं है और फिर भी क्या समझ रहे हैं अपने आपको। यह सब पर्याय-बुद्धि है। इसमें कुछ भी नहीं है।

ऐसे अनमोल क्षण चले जा रहे हैं, आप लोगों के। इसलिए, यदि साधु नहीं बन सकते, मुनि नहीं बन सकते तो ना सही, परन्तु श्रावकाचार के अनुरूप सदासुखदास जी का तो साथ आप सबको देना ही चाहिए। यानि श्रावक के व्रतों को तो अंगीकार करना ही चाहिए जो कि परम्परा से मोक्ष-सुख के साधन हैं।

''महावीर भगवान् की जय'' (केसली 8-3-86 जन्म महोत्सव दिवस प्रात:काल)

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

शान्तिर्जिनो मे भगवान् शरण्यः।

सत्पथ-दर्पण

गतांक से आगे.....

स्व. पं. अजित कुमार शास्त्री
(पूर्व जैनगजट संपादक)

सोलहवीं वार्ता

रत्नत्रय

आत्मा को कर्म-बन्धन से जकड़ कर संसार में भ्रमण कराने वाले भावकर्म मिथ्यात्व, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र हैं। आत्मा जब अपने पुरुषार्थ से मोहनीय कर्म पर यथा सम्भव विजय प्राप्त करके सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को प्राप्त करता है। तब यथासम्भव गुणस्थान क्रम से अपने पूर्वबद्ध कर्मों की अविपाक निर्जरा करना प्रारम्भ कर देता है तथा मिथ्यात्व-अज्ञान-असंयम से होने वाले कर्म-आस्रव पर यथासम्भव प्रतिबन्ध लगाकर कर्मसंवर करना प्रारम्भ कर देता है।

सत् श्रद्धान, सत्ज्ञान और सच्चचारित्र आत्मा के महान गुण हैं, धर्म रूप हैं (सद्दृष्टिज्ञानवृत्तानि, धर्मं धर्मेश्वरा विदुः रत्न क.श्रा.) तथा आत्मा का परम अभ्युदय करने वाले हैं, आत्म-शुद्धि करने वाले हैं, अतः इनको 'रत्नत्रय' यानी- आत्मा के तीन रत्न कहा जाता है। इसी रत्नत्रय को 'मोक्षमार्ग' भी कहते हैं। क्योंकि सम्यग्दर्शन आदि होते ही मोक्ष का मार्ग (रास्ता); कर्मों का संवर और निर्जरा प्रारम्भ हो जाने के कारण, प्रारम्भ हो जाता है।

यह मोक्षमार्ग समस्त आर्ष ग्रन्थों में दो प्रकार का बतलाया गया है- 1. निश्चय मोक्षमार्ग, 2. व्यवहार मोक्षमार्ग।

मोहनीय कर्म के कुछ भाग के उपशम, क्षय या क्षयोपशम हो जाने से और कुछ भाग के विद्यमान रहने से आत्मा में जो सराग सम्यक्दर्शन, सराग सम्यग्ज्ञान, सराग सम्यक्चारित्र होता है, वह पांचवें गुणस्थान से दशवें गुणस्थान तक का सम्यक्त्व, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र व्यवहार मोक्षमार्ग है। (चौथे गुणस्थान में सम्यक्त्व और सम्यक्ज्ञान होता है पांचवे गुणस्थान सम्यक्त्व, ज्ञान और देश चारित्र होता है। छठे गुण-स्थान से सम्यक्त्व, ज्ञान के साथ सकल चारित्र यानी-महाव्रती चारित्र प्रारम्भ हो जाता है)।

दशवें गुणस्थान का सूक्ष्म राग रूप सूक्ष्म संज्वलन लोभ जब अस्त हो जाता है तो वही व्यवहार मोक्षमार्ग ग्यारहवें गुणस्थान में अन्तर्मुहूर्त्त के लिए उपशान्तमोह और बारहवें क्षीण-कषाय गुणस्थान में सदा के लिए 'वीतराग मोक्षमार्ग' (सम्यक्त्व ज्ञान चारित्र) हो जाता है तथा तेरहवें गुणस्थान में केवल-ज्ञान का उदय हो जाने पर आत्मा के तीनों रत्न सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र पूर्ण हो जाते हैं।

कुछ आचार्यों के मत से व्यक्त राग की अपेक्षा पांचवें, छठे, सातवें गुणस्थान का एक देश (श्रावक का) तथा सकलदेश (मुनिका) चारित्र सराग चारित्र यानी-व्यवहार-चारित्र है। अव्यक्त राग की अपेक्षा आठवें गुणस्थान से शुद्धोपयोग रूप निश्चय चारित्र प्रारम्भ हो जाता है, जो कि गुणस्थान-क्रम से बढ़ता हुआ क्षीणकषाय नामक बारहवें गुणस्थान में पूर्ण होता है। तेरहवें सयोग-केवली गुणस्थान में ज्ञान पूर्ण हो जाने से

रत्नत्रय पूर्ण हो जाता है।

छठे गुणस्थान से आगे आयु कर्म की उदीरणा नहीं होती। तदनुसार अवशिष्ट आयु तक पूर्ण रत्नत्रयधारी आत्मा (अर्हन्त) को तेरहवें गुणस्थान में रहना पड़ता है। आयु के अन्तिम काल में पांच ह्रस्व अक्षर (अ इ उ ऋ लृ) के उच्चारण समय तक योग-निरोध करके चौदहवाँ गुणस्थान होता हे, तदनन्तर सर्व कर्म, नोकर्म से मुक्त होकर आत्मा सिद्ध बन जाता है।

इस तरह व्यवहार (रत्नत्रय) साधन है और निश्चय रत्नत्रय (मोक्षमार्ग) साध्य है। साधन द्वारा साध्य की सिद्धि होती है। इस नियम के अनुसार व्यवहार रत्नत्रय पहले होता है और निश्चय रत्नत्रय उसके पश्चात् होता है।

यदि व्यवहार रत्नत्रयधारी मुनि उस भव में सातवें गुणस्थान से क्षपक श्रेणी द्वारा या उपशम श्रेणी द्वारा ऊपर न चढ़ सके, शुक्ल-ध्यान उसके न हो पावे, धर्मध्यान तक ही रहे, तो उस भव में व्यवहार रत्नत्रय ही बना रहेगा, निश्चय रत्नत्रय उसके न होगा। निश्चय रत्नत्रय अन्य किसी भव में उसके होगा। तब वह मुक्त होगा।

इस आर्ष सिद्धान्त के विरुद्ध कहान पंथ से प्रकाशित तत्त्वार्थ सूत्र, द्रव्यसंग्रह, छहढाला की टीका आदि साहित्य में व्यवहार रत्नत्रय को निश्चय रत्नत्रय का साधन नहीं बतलाया गया है।

श्री अमृतचन्द्र सूरि ने तत्त्वार्थसार के उपसंहार में लिखा है-

निश्चयव्यवहाराभ्यां मोक्षमार्गो द्विधा स्थितः।
तत्राद्यः साध्यरूपः स्याद् द्वितीयस्तस्य साधनम्॥2॥

अर्थ- मोक्षमार्ग दो प्रकार का है- 1. निश्चय मोक्षमार्ग, 2. व्यवहार मोक्षमार्ग। उनमें से निश्चय मोक्षमार्ग है और व्यवहार मोक्षमार्ग उसका साधन है।

छहढाला में पं. दौलतराम जी ने लिखा है-

सम्यक्दर्शन ज्ञान चरण शिव-मग सो दुविधि विचारो।
जो सत्यार्थ रूप सो निश्चय कारण सो व्यवहारो॥

अर्थ- सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र, यह मोक्षमार्ग है। वह मोक्षमार्ग दो प्रकार का है- निश्चय और व्यवहार। जो सत्यार्थ रूप है, वह निश्चय मोक्षमार्ग है और जो उस निश्चय मोक्षमार्ग का कारण है सो व्यवहार मोक्षमार्ग है।

श्री कुन्दकुन्द आचार्य ने पंचास्तिकाय में लिखा है-

धम्मादी सद्दहणं सम्मत्तं णाणमंगपुव्वगदं।
चेट्ठा तवम्हि चरिया, ववहारो मोक्खमग्गोत्ति॥160॥

अर्थ- धर्म आदि द्रव्यों (तत्त्वों पदार्थों आदि) का श्रद्धान करना सम्यक्त्व है, अंग पूर्व आदि का बोध होना सम्यग्ज्ञान है और तप संयम आदि का करना सम्यक्चारित्र है, यह व्यवहार मोक्षमार्ग है।

इसकी टीका में श्री अमृतचन्द्र सूरि ने लिखा है-

'व्यवहारनयमाश्रित्यानुगम्यमानो मोक्षमार्गः ..... निश्चयमोक्षमार्गस्य साधनभावमापद्यते

इति।

अर्थ- व्यवहार नय का आश्रय करके यह (व्यवहार) मोक्षमार्ग निश्चय मोक्षमार्ग का साधन बनता है।

तदनन्तर लिखा है-

णिच्छयणयेण भणिदो तिहि तेहिं समाहिदो हु जो अप्पा।
ण कुणदि किंचि वि अण्णं ण मुयदि सो मोक्खमग्गोत्ति ॥ 161 ॥

अर्थ-निश्चय नय से उन तीनों (सम्यक्त्व ज्ञान चारित्र) से सम्पन्न आत्मा ही मोक्षमार्ग है, जो (निश्चय मोक्षमार्गी) आत्मा न कुछ करता है, न छोड़ता है।

इस गाथा की टीका के अन्त में श्री अमृतचन्द्र सूरि लिखते हैं-

'अतो निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गयोः साध्यसाधनभावो नितरामुपपन्न इति।'

अर्थ- इसलिए निश्चय और व्यवहार मोक्षमार्ग में क्रम से साध्य-साधन भाव अच्छी तरह से प्राप्त होता है। यानी-निश्चय मोक्षमार्ग साध्य है और व्यवहार मोक्षमार्ग उसका साधन है।

पंचास्तिकाय गाथा 159 की टीका में श्री अमृतचन्द्र आचार्य ने लिखा है-

''निश्चयव्यवहारयोः साध्य-साधनभावत्वात् सुवर्णसुवर्णपाषाणवत्।''

अर्थ- निश्चय और व्यवहार मोक्षमार्ग का सुवर्ण तथा सुवर्ण-पाषाण के समान साध्य साधन भाव है।

द्रव्य संग्रह गाथा 39 की टीका में भी लिखा है-

धातुपाषाणेऽग्निवत्साधको व्यवहारमोक्षमार्गः सुवर्णस्थानीयनिर्विकार-स्वोपलब्धि साध्यरूपो निश्चयमोक्षमार्गः।

अर्थ- सुवर्णपाषाण में उस को शुद्ध करने के लिये अग्नि के समान व्यवहार मोक्षमार्ग, निश्चय मोक्षमार्ग का साधक है और अग्नि-प्रयोग से पत्थर में से निकाले गये शुद्ध सुवर्ण के समान निर्विकार स्व-आत्मा की उपलब्धि रूप साध्य निश्चय रत्नत्रय उससे पीछे होता है।

कहान पंथ-साहित्य

कहान पंथ साहित्य की मान्यता उक्त आर्ष-सिद्धान्त के विपरीत है। सोनगढ़ से प्रकाशित मोक्ष-शास्त्र (तत्त्वार्थसूत्र) की टीका के पृष्ठ 123 पर लिखा है-

''प्रथम जब निश्चय सम्यग्दर्शन प्रगट होता है तब विकल्प रूप व्यवहार सम्यग्दर्शन का अभाव होता है। इसलिए यह व्यवहार सम्यग्दर्शन का वास्तव में निश्चय सम्यग्दर्शन साधक नहीं है, तथापि उसे भूतनैगम नय से साधक कहा जाता है। अर्थात् पहले जो व्यवहार सम्यग्दर्शन था वह निश्चय सम्यग्दर्शन के प्रकट होते समय अभाव रूप होता है तब पूर्व की सविकल्प श्रद्धा को व्यवहार सम्यग्दर्शन कहा जाता है इस प्रकार व्यवहार सम्यग्दर्शन निश्चय सम्यग्दर्शन का कारण नहीं किन्तु उसका अभाव कारण है।''

कहानपंथ साहित्य का यह लिखना अपनी निजी निराधार गलत कल्पना है जिसका कोई आगम ग्रन्थ समर्थन नहीं करता।

जब पूर्वोक्त श्री कुन्दकुन्द आचार्य, श्री अमृचन्द्र सूरि, द्रव्य-संग्रह के टीकाकार, आदि निश्चय रत्नत्रय का साधन; व्यवहार रत्नत्रय को स्पष्ट बतलाते हैं, उसके लिये सुवर्ण-पाषाण और सुवर्ण का दृष्टान्त देते हैं, तब कहान पंथ का साहित्य कहता है कि 'नहीं, व्यवहार सम्यग्दर्शन निश्चयसम्यग्दर्शन का कारण नहीं है।'

अपनी आगम-विरुद्ध मान्यता के लिए कहान पंथ के टीकाकार लिखते हैं-

''व्यवहार सम्यग्दर्शन कारण नहीं है किन्तु निश्चय सम्यक्दर्शन में उसका (व्यवहार सम्यग्दर्शन का) अभाव कारण है।'

पूर्व पर्याय का नाश होकर ही उत्तर पर्याय का उत्पाद होता है, यह कार्य-कारण भाव का मूल नियम है। तदनुसार ही समस्त लौकिक तथा अध्यात्मिक कार्य कारण होते हैं।

आटा रोटी का कारण है, किशोर-अवस्था यौवन-अवस्था का कारण है, बीज अपने वृक्ष का कारण है, अर्हन्त अवस्था सिद्ध-अवस्था का कारण है। कारण-समयसार कार्य-समयसार का कारण है। ये समस्त कार्य-कारण-भाव पूर्व उत्तर-पर्याय रूप हैं।

आटा पर्याय का नाश होकर ही रोटी बनती है, तो क्या आटा रोटी का कारण नहीं है? किशोर-अवस्था (15-16 वर्ष की आयु) के समाप्त होने पर यौवन अवस्था आती है, तो क्या किशोरअवस्था यौवन का कारण नहीं है? बीज गल कर अंकुर रूप बनता है, तो क्या बीज अंकुर का कारण नहीं है? अर्हन्त अवस्था, सिद्ध अवस्था का कारण नहीं है? कारण समयसार पर्याय का व्यय होकर कार्य-समय सार पर्याय का उत्पाद होता है तो क्या कारण-समयसार, कार्य समयसार का कारण नहीं है?

इन प्रश्नों का स्पष्ट उत्तर सर्वजन-सम्मत यही कि आटा, रोटी का कारण है और अर्हन्त-पर्याय सिद्ध-पर्याय का कारण है, कारण समयसार कार्य-समयसार का कारण है।

कार्योत्पादः क्षयो हेतोः- कार्य का उत्पाद पूर्वपर्याय के यानी उपादान कारण के क्षय से होता है।

इससे, 'व्यवहार-सम्यक्त्व निश्चय-सम्यक्त्व का साधन या साधक नहीं है,' यह आगम-विरुद्ध मान्यता कहाँ प्रमाणित होती है?

वृहद् द्रव्यसंग्रह की गाथा 22 की टीका में लिखा है-

केवलज्ञानादिव्यक्तिरूपेण कार्यसमयसारस्योत्पादो, निर्विकल्पसमाधिरूपकारण-समयसारस्य विनाशः।

अर्थ- केवलज्ञान आदि प्रगट होने से (अर्हन्त रूप होने से) कार्य समयसार का उत्पाद होता है और निर्विकल्पसमाधिरूप कारण समयसार का विनाश होता है।

आधार

कहान पंथ की गलत मान्यता के समर्थन में जो शास्त्रीय प्रमाण दिये हैं, उनसे भी उस मान्यता की पुष्टि नहीं होती। देखिये-

1- परमात्म प्रकाश- 2-14 गाथा की टीका में स्पष्ट लिखा है 'भूतनैगमनयेन परम्परया भवति।' यानी- भूतनैगम नय की अपेक्षा से व्यवहार-मोक्षमार्ग निश्चय-मोक्षमार्ग का साधक है। गाथा तथा टीका में

व्यवहार रत्नत्रय को परम्परा से मोक्ष कारण कहा है।

पं. वंशीधर जी यह बतलावें कि क्या व्यवहार-मोक्षमार्ग के पश्चात् निश्चय मोक्षमार्ग नहीं होता? क्या उनके बीच में कुछ और भी दशा होती है?

2-मोक्षमार्गप्रकाशक का जो प्रमाण-उल्लेख किया है, उसको गलत रूप से रक्खा है। उसके दो पंक्ति आगे श्री पं. टोरमल जी ने पंक्ति 16 में स्पष्ट लिखा है-

'सो महाव्रतादि भए ही वीतराग चारित्र हो है।'

मोक्षमार्गप्रकाशक के इस वाक्य से कहानपंथ सिद्धान्त की मान्यता का खंडन होता है।' क्योंकि 'महाव्रतादि होने के पश्चात् ही वीतराग चारित्र होता है।' यह आगमानुसार बात मोक्षमार्गप्रकाशक में स्पष्ट लिखी है।

3- मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ 376 का अभिप्राय भी कहानपंथ-साहित्य का समर्थक नहीं है। वहाँ स्पष्ट लिखा है-

''नीचली दशा विषैं केई जीवनिकैं शुभोपयोग अर शुद्धो-पयोग का युक्तपना पाइये है। तातैं उपचार करि व्रतादिक शुभोपयोगकों मोक्षमार्ग कह्या है।''

(शुभोपयोग शुद्धोपयोग की मिश्रित दशा निश्चय-मोक्षमार्ग का कारण है ही।)

मोक्षमार्गप्रकाशक के इन वाक्यों का अभिप्राय कहानपंथ-सिद्धान्त का खंडन करता है।

''इतना है-शुभोपयोग भये शुद्धोपयोग का यत्न करै तो होय जाये। सम्यग्दृष्टि कैं शुभोपयोग भये निकट शुद्धोपयोग प्राप्त होय, ऐसा मुख्यपना करि कहीं शुभोपयोगकों शुद्धोपयोग का कारण भी किहिये है।'' पृष्ठ 377

4- द्वादशानुप्रेक्षा की गाथा 59 में व्यवहार, निश्चय-मोक्षमार्ग के साधन-साध्य भाव के विरुद्ध कुछ भी कथन नहीं है। इससे कहानपंथ सिद्धांत का रंचमात्र भी पोषण नहीं होता।

5- प्रवचनसार गाथा 225 में कोई ऐसी बात नहीं है जिससे निश्चय, व्यवहार-मोक्षमार्ग के साध्य साधन भाव पर प्रहार होता हो।

इस गाथा की श्री अमृचन्द्र सूरि कृत टीका में स्पष्ट लिखा है-

''शुभोपयोगस्य धर्मेण सहैकार्थसमवायः। ततः शुभोपयोगिनोपि धर्म सद्भावाद् भवेयुःश्रमण।''

अर्थ- शुभोपयोग का धर्म के साथ एकार्थ समवाय है, इस कारण शुभोपयोगी भी धर्म के सद्भाव से श्रमण होते हैं।

इससे तो उलटा कहानपंथ सिद्धान्त का खण्डन होता है क्योंकि कहानपंथ के नेता शुभोपयोग को धर्म रूप ही नहीं मानते?

प्रवचनसार की गाथा 11 में तथा उसकी टीका में भी शुभोपयोगी को धर्मात्मा कहा है।

6- पंचास्तिकाय की गाथा 167 तथा 168 में एवं उसकी टीका में राग का सूक्ष्म अंश भी शुद्ध आत्म-स्वरूप का घातक कहा है। सो ठीक है सूक्ष्म-सम्पराय गुणस्थान तक आत्मा की पूर्ण शुद्धता नहीं होती।

पंचास्तिकाय गाथा 167 की तात्पर्य वृत्ति टीका में लिखा है-

''ततः कारणात्पूर्वं विषयानुरागं त्यक्त्वा तदनन्तरं गुण-स्थान-सोपानक्रमेण रागादिरहितनिजशुद्धात्मनि स्थित्वा चार्हदादिविषयेपि रागस्त्याज्य इत्यभिप्रायः।''

इसमें तो यह बतलाया है कि प्रथम विषयानुराग को छोड़कर अर्थात् व्यवहार रत्नत्रय को धारण कर गुणस्थान अनुक्रम से रागादि से रहित अपने आत्मा में स्थित होकर अरहन्त के प्रति भी राग त्याज्य है। इसमें तो छठे सातवें गुणस्थान क्रम से व्यवहार रत्नत्रय द्वारा निश्चय रत्नत्रय प्राप्त करने का विधान है।

7- मोक्षमार्गप्रकाशक के पृष्ठ 376-377 का कथन सम्यग्दृष्टि के शुभोपयोग को मोक्षमार्ग स्पष्ट रूप से बतला रहा है। इससे कहानपंथ सिद्धांत का खंडन होता है।

8- पद्मनन्दि पंचविंशतिका अध्याय 1 श्लोक 81 में सम्यग्दृष्टि के रत्नत्रय को संसार-विध्वंसक और बहिरात्मा (मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिङ्गी) के बाहरी रत्नत्रय को शुभ अशुभ कर्म-बन्ध का कारण बतलाया है, सो ठीक है।

सम्यग्दृष्टि का व्यवहार-रत्नत्रय ही निश्चय-रत्नत्रय का साधन बतलाया गया है। बहिरात्मा (मिथ्यादृष्टि) का बाहरी (दिखावटी) रत्नत्रय निश्चय-रत्नत्रय का साधन नहीं होता।

9- मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ 334 तथा 340 के निम्नलिखित वाक्यों पर संभवतः पं. वंशीधर जी ने ध्यान नहीं दिया।

''यह भाव मिश्र रूप है। किछू वीतराग भाग है, किछू सराग रह्या है। जे अंश वीतराग भए 'तिनकरि संवर' है अर जे अंश सराग रहे तिन करि 'बंध' है। 'सो एक भाव तैं दोय कार्य बने।'' (334)

''स्तोक शुद्धता भए शुभोपयोग का भी अंश रहे, 'तो जेती शुद्धता भई ताकरि तो निर्जरा है अर जेता शुभ भाव है 'ताकरि बंध है।' ऐसा मिश्र भाव युगपत् है, 'तहाँ बन्ध वा निर्जरा दोऊ' है।'' (340)

इस विवरण से तो उस कहानपंथ सिद्धान्त का खण्डन होता है कि 'पाँचवें, छठे गुणस्थान के अणुव्रती महाव्रती व्यवहार चारित्र से केवल आस्रव होता है, संवर निर्जरा नहीं होती।''

जबकि श्री पं. टोडरमल जी ने व्यवहार चारित्र से संवर निर्जरा होना भी स्पष्ट लिखा है।

अतः ये 9 आधार साहित्य के समर्थक नहीं हैं।

क्रमशः.....

अन्तिम तीर्थंकर भ.महावीर विषयक चिन्तन हमें प्राचीन भारतीय संस्कृति के मूलाधारों किंवा साधारण तथा सजग मानवीय संस्कृति के सम्पर्क में लाता है क्योंकि अहिंसा का सिद्धान्त सब पशुओं मनुष्य एवं जीवों के प्रति दया जिसकी कि साहित्यक व्याख्या छंदोपयोगोपनिषद् के एक रहस्य खण्ड में मिलती है, उनके लिए जीवन का एक यथार्थ सत्य था। भ.महावीर की श्रेष्ठ शिक्षाएँ मोक्ष-मार्ग का निर्देश करती हैं। आज भी उतनी ही कार्यकारी हैं जितनी कि वे कभी थीं।

-डॉ.एच.वुड्स. एम्सटरडम, हॉलैण्ड

मध्यलोक में भोगभूमियाँ : एक अनुचिन्तन

-डॉ. जयकुमार जैन

आकाश के जिस भाग में जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल द्रव्य पाये जाते हैं, वह लोक है तथा शेष आकाश अलोक कहलाता है। जगश्रेणी में घन प्रमाण से यह लोक तीन भागों में विभक्त है-अधोलोक, ऊर्ध्वलोक और मध्यलोक। इनमें अधोलोक का आकार वेत्रासन के समान, मध्यलोक का आकार खड़े किये गये आधे मृदंग के ऊर्ध्व भाग के समान तथा ऊर्ध्वलोक का आकार खड़े किये हुए मृदंग के समान है। (1) तीनों लोकों का समन्वित आकार उस मनुष्य सदृश है, जो अपने दोनों पैरों को फैलाकर एवं दोनों हाथों को कटि प्रदेश पर रखकर खड़ा हो। अधोलोक में नरक की सात भूमियाँ एवं उनके नीचे निगोदों की निवासभूत अष्टम भूमि है। ऊर्ध्वलोक सुमेरु पर्वत की चोटी से एक बाल मात्र अन्तर से प्रारम्भ होकर लोक शिखर तक है। इनमें सर्वार्थसिद्धि तक स्वर्गलोक तथा सर्वार्थसिद्धि के ध्वजदण्ड से 29 योजन 425 धनुष ऊपर सिद्धलोक है।

मध्यलोक का परिचय

लोकाकाश के ठीक बीच में एक राजू लम्बा, एक राजू चौड़ा एवं एक लाख चालीस योजन ऊँचा मध्यलोक है। यत: इसमें द्वीप एवं समुद्रों की रचना तिरछे रूप में पाई जाती है, अत: इसे तिर्यग्लोक भी कहा जाता है। इसमें जम्बूद्वीप एवं लवण समुद्र से लेकर एक दूसरे को आवेष्टित किये हुए असंख्यात द्वीप एवं समुद्र हैं। इन द्वीप एवं समुद्रों का विस्तार एक दूसरे से दूना-दूना है। जम्बूद्वीप में भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक्, हैरण्यवत और ऐरावत नामक सात क्षेत्र पाये जाते हैं। इनका विभाजन पूर्व से पश्चिम तक लम्बायमान हिमवन्, महाहिमवन्, निषध, नील, रुक्मि एवं शिखरी नामक छ: कुलाचल करते हैं। (2) आगमवर्णित सप्त क्षेत्रों के नाम अनादि-निधन एवं शाश्वत हैं।

भूमि का अर्थ

लोक में जीवों के निवास स्थान को भूमि कहा जाता है। मध्यलोक में कर्मभूमि एवं भोगभूमि नामक दो प्रकार की भूमियाँ हैं, जिनमें मनुष्य और तिर्यंच निवास करते हैं। जहाँ के निवासी स्वयं कृषि आदि षट्कर्म करके जीवनयापन करते हैं, उसे कर्मभूमि कहा जाता है तथा जहाँ ऐसी व्यवस्था नहीं है, अपितु कल्पवृक्षजन्य भोगों की प्रधानता है, उसे भोगभूमि कहा जाता है। यद्यपि भोगभूमि पुण्यफल मानी जाती है, तथापि भोगभूमि से मोक्ष पुरुषार्थ की साधना नहीं होती है।

भोगभूमि का अर्थ

आचार्य पूज्यपादस्वामी ने भोगभूमि का निरुक्त्यर्थ करते हुए कहा है-''दशविधकल्पवृक्ष-कल्पित भोगानुभवनविषयत्वाद् भोगभूमय इति व्यपदिश्यन्ते'(3) अर्थात् दस प्रकार के कल्पवृक्षों से प्राप्त हुए भोगों के उपभोग की मुख्यता होने से भोगभूमियाँ कही जाती हैं। भगवतीआराधना की विजयोदया टीका में श्री अपराजितसूरि ने भोगभूमिज मनुष्यों का वर्णन करते हुए लिखा है कि जहाँ मनुष्य मद्य, तूर्य, वस्त्र, आहार, पात्र, आभरण, माला, घर, दीप और ज्योति प्रदान करने वाले दस प्रकार के कल्पवृक्षों से जीवनयापन करते हैं, जहाँ

पुर, ग्राम आदि नहीं होते हैं, न राजा होते हैं। न कुल, न कर्म एवं न शिल्प होता है। न वर्णव्यवस्था, न आश्रम व्यवस्था होती है। जहाँ स्त्री-पुरुष नीरोग रहकर पति-पत्नी के रूप में रमण करते हुए पूर्व जन्म के पुण्य का फल भोगते हैं और स्वभावत: भद्र होने के कारण मरकर भी स्वर्ग में जाते हैं, वे भोगभूमियाँ कही गई हैं। इनमें जन्म लेने वाले मनुष्य भोगभूमिज कहलाते हैं।(4)

कल्पवृक्ष और उनका कार्य

जो युगलों को अपने-अपने मन से कल्पित वस्तुएँ प्रदान करते हैं, उन्हें कल्पवृक्ष कहते हैं। भोगभूमि में पानांग, तूर्यांग, भूषणांग, वस्त्रांग, भोजनांग, आलयांग, दीपांग, भाजनांग, मालांग और तेजांग नामक कल्पवृक्ष होते हैं। पानांग जाति के कल्पवृक्ष मधुर, सुस्वाद, षट्रसयुक्त, प्रशस्त, अतिशीतल, तुष्टि एवं पुष्टिकारक बत्तीस प्रकार के पेय प्रदान करते हैं। तूर्यांग जाति के कल्पवृक्ष उत्तम वीणा, पटु पटह, मृदंग, झालर, शंख, दुंदुभि, भंभा, भेरी और काहल आदि वादित्र प्रदान करते हैं। भूषणांग जाति के कल्पवृक्ष कंकण, कटिसूत्र, हार, केयूर, मंजीर, कटक, कुण्डल, किरीट और मुकुट आदि आभूषण प्रदान करते हैं। वस्त्रांग जाति के कल्पवृक्ष चीनपट, उत्तम क्षौम तथा मन एवं नेत्रों को आनन्ददायक नाना प्रकार के अन्य वस्त्र प्रदान करते हैं। भोजनांग जाति के कल्पवृक्ष सोलह प्रकार के आहार, सोलह प्रकार के व्यंजन, चौदह प्रकार के सूप, एक सौ आठ प्रकार के खाद्य पदार्थ, तीन सौ तिरेसठ प्रकार के स्वाद्य पदार्थ तथा तिरेसठ प्रकार के रस पृथक्-पृथक् प्रदान करते हैं। आलयांग जाति के कल्पवृक्ष स्वस्तिक एवं नन्द्यावर्त आदि सोलह प्रकार के रमणीय भवन प्रदान करते हैं। दीपांग जाति के कल्पवृक्ष प्रासादों में शाखा, प्रवाल, फल, फूल एवं अंकुर आदि के द्वारा जलते हुए दीपकों के समान प्रकाश प्रदान करते हैं। भाजनांग जाति के कल्पवृक्ष स्वर्ण एवं विविध रत्नों से निर्मित थाल, झारी, कलश, गागर, चामर और आसन आदि प्रदान करते हैं। मालांग जाति के कल्पवृक्ष वल्ली, तरु, गुच्छ एवं लताओं से उत्पन्न सोलह हजार प्रकार के फूलों की विविध मालायें प्रदान करते हैं। तेजांग जाति के कल्पवृक्ष दोपहर के करोड़ों सूर्यों की किरणों के समान होकर नक्षत्र, चन्द्र एवं सूर्य आदि की कान्ति का संहरण करते हैं। ये कल्पवृक्ष न तो वनस्पतिकायिक हैं और न ही व्यन्तर देव हैं, अपितु पृथ्वीकायिक हैं तथा जीवों को उनके पुण्य का फल प्रदान करते हैं।(5)

मध्यलोक में भोगभूमियाँ

मध्यलोक के सात क्षेत्रों में हैमवत और हैरण्यवत दो क्षेत्रों में सदैव दु:षमासुषमा काल रहता है, अत: वहाँ पर जघन्य भोगभूमि रहती है। हरि और रम्यक् इन दो क्षेत्रों में सदैव सुषमाकाल रहता है, अत: वहाँ पर मध्यम भोगभूमि रहती है। निषध एवं नील पर्वतों के अन्तराल में स्थित विदेहक्षेत्र के बहुमध्य भाग में एक सुमेरु और चार गजदन्त पर्वत हैं। इनसे रोका गया भूखण्ड देवकुरु और उत्तरकुरु कहलाता है। देवकुरु एवं उत्तरकुरु रूप विदेह क्षेत्र में सदा उत्तम भोगभूमि रहती है। शेष विदेह क्षेत्र में कर्मभूमि है।

भरत एवं ऐरावत क्षेत्र कर्मभूमियाँ हैं, किन्तु यहाँ पर उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के रूप में छ: समयों की अपेक्षा वृद्धि और ह्रास होता रहता है। उत्सर्पिणीकाल में भरत एवं ऐरावत क्षेत्र में रहने वाले मनुष्यों में भोग, उपभोग, अनुभव, सम्पदा, आयु, परिमाण, शरीर की ऊँचाई, विभूति आदि में क्रमश: वृद्धि तथा अवसर्पिणी काल में ह्रास होता जाता है। उत्सर्पिणी काल में दुषमा-दुषमा, दुषमा-सुषमा, सुषमा-दुषमा, सुषमा एवं

सुषमा-सुषमा ये षट्काल होते हैं तथा अवसर्पिणी में इसके विपरीत सुषमा-सुषमा, सुषमा, सुषमा-दुषमा, दुषमा-सुषमा, दुषमा और दुषमा-दुषमा ये छः काल होते हैं। सुषमा-सुषमा नामक उत्सर्पिणी के पहले काल में उत्तम भोगभूमि की व्यवस्था पाई जाती है। सुषमा नामक उत्सर्पिणी के पाँचवे तथा उत्सर्पिणी के दूसरे काल में मध्यम भोगभूमि की व्यवस्था पाई जाती है। सुषमा-दुषमा नामक उत्सर्पिणी के चौथे तथा अवसर्पिणी के तीसरे काल में जघन्य भोगभूमि की व्यवस्था पाई जाती है। शेष कालों में कर्मभूमि रहती है।

उत्सर्पिणी एवं अवसर्पिणी रूप से कालचक्र का घुमाव भरत एवं ऐरावत क्षेत्र के आर्यखण्डों में ही पाया जाता है, अन्यत्र नहीं। विदेहक्षेत्र में देवकुरु एवं उत्तरकुरु में सुषमा-सुषमा काल तथा शेष क्षेत्र में दुषमा-सुषमा काल पाया जाता है।

उत्तम भोगभूमि की अवस्थिति

उत्तम भोगभूमि (सुषमा-सुषमा काल) में भूमि रज, धूम, दाह एवं हिम से रहित, साफ-सुथरी, ओलावृष्टि एवं बिच्छू आदि कीड़ों के उपसर्ग से रहित, निर्मल दर्पण के समान, निंद्य पदार्थों से रहित, तन-मन एवं नयनों को सुखदायक होती है। उस पर चतुरंगल ऊँचे तृण, विचित्र वर्ण वाले वृक्ष, कमलादि से पूर्ण किन्तु मकरादि से रहित पुष्करिणी और वापिकायें होती हैं। उत्तम भोगभूमि में विकलेन्द्रिय जीव नहीं होते हैं, असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव भी नहीं होते हैं। स्त्री-पुरुषों में किसी भी प्रकार की वेदना नहीं होती है। वे चौथे दिन बेर के बराबर आहार ग्रहण करते हैं। स्त्री-पुरुषों के शरीर की ऊँचाई छः हजार धनुष, आयु तीन पल्य होती है। प्रत्येक स्त्री-पुरुष के पृष्ठ भाग में 256हड्डियाँ होती हैं। नर-नारी के अतिरिक्त अन्य कोई परिवार नहीं होता है। एक व्यक्ति में नौ हजार हाथियों के बराबर बल होता है। इनका भोग चक्रवर्ती के भोग से अनन्तगुणा होता है। इनका संहनन वज्रवृषभनाराच और संस्थान समचतुरस्र होता है। स्त्री का मरण जम्हाई से तथा पुरुष का मरण छींक से हो जाता है। इनका कदलीघात मरण नहीं होता है। उत्तम भोगभूमि में वे जीव उत्पन्न होते हैं जो मिथ्यात्व सहित होने पर भी मन्दकषायी, जिनपूजक, संयमी एवं आहारदान आदि गुणों के धारक होते हैं। पूर्व में मनुष्यायु बाँधकर तीर्थंकर के पादमूल में क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त सम्यग्दृष्टि भी उत्तम भोगभूमि में उत्पन्न हो जाते हैं। पात्र को दान देकर या दानी की अनुमोदना करने वाले तिर्यंच भी भोगभूमि में उत्पन्न होते हैं। कुलिंगसेवी या कुलिंगी भोगभूमि में तिर्यंच होते हैं। भोगभूमिज मनुष्य एवं तिर्यंचों में नौ माह आयु शेष रहने पर ही गर्भधारण होता है। गर्भ से युगल पैदा होते ही तत्काल नर-नारी का मरण हो जाता है। भोगभूमिज मिथ्यादृष्टि मनुष्य एवं तिर्यंच भवनत्रिक में तथा सम्यग्दृष्टि मनुष्य एवं तिर्यंच सौधर्म-ऐशान स्वर्ग पर्यन्त उत्पन्न होते हैं। भोगभूमि में उत्पन्न बालक शय्या पर अंगूठा चूसने, बैठने, अस्थिर गमन, स्थिर गमन, गुण प्राप्ति, तारुण्यप्राप्ति एवं सम्यक्त्वग्रहण की योग्यता में क्रमशः तीन-तीन दिन लगाते हैं। भोगभूमिज नर-नारी का शरीर धातुमय होता है, फिर भी छिन्न-भिन्न नहीं हो सकता है। उनके शरीर में मल-मूत्र का आस्रव नहीं होता है । भोगभूमि में व्याघ्रादिक भी कल्पवृक्षों के मधुर फल ही भोगते हैं।

मध्यम भोगभूमि की अवस्थिति

मध्यम भोगभूमि (सुषमा काल) में मनुष्यों के शरीर की ऊँचाई चार हजार धनुष, आयु दो पल्य होती है।

इनके पृष्ठभाग में एक सौ अट्ठाईस हड्डियाँ होती हैं। वे तीसरे दिन बहेड़ा फल बराबर अमृतमय आहार करते हैं। उत्पन्न हुए बालक को शय्या पर अंगूठा चूसने, बैठने, अस्थिर गमन, स्थिर गमन, गुणप्राप्ति, तारुण्यप्राप्ति एवं सम्यक्त्व ग्रहण की योग्यता में क्रमशः पाँच-पाँच दिन लग जाते हैं। शेष सब स्थिति उत्तम भोगभूमि की ही तरह होती है। (10)

जघन्य भोगभूमि की अवस्थिति

जघन्य भोगभूमि (सुषमा-दुषमा काल) में मनुष्यों की ऊँचाई दो हजार धनुष, आयु एक पल्य होती है। यहाँ के स्त्री-पुरुषों के पृष्ठ भाग में चौंसठ हड्डियाँ होती हैं। समचतुरस्रसंस्थानधारी ये एक दिन के अन्तराल से आँवले बराबर अमृतमय आहार लेते हैं। उत्पन्न हुए बालक को शय्या पर अंगूठा चूसने, बैठने, अस्थिर गमन, स्थिर गमन, गुणप्राप्ति, तारुण्यप्राप्ति एवं सम्यक्त्व ग्रहण की योग्यता में क्रमशः सात-सात दिन लग जाते हैं। शेष कथन उत्तम एवं मध्यम भोगभूमि की तरह ही हैं। (11) भोगभूमि में मरण होने पर मनुष्य का शरीर कर्पूरवत् उड़ जाता है।

भोगभूमि में गुणस्थान आदि

भोगभूमिज जीवों में अपर्याप्त अवस्था में मिथ्यात्व एवं सासादन दो गुणस्थान, पर्याप्त अवस्था में मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र एवं अविरतसम्यग्दृष्टि-चार गुणस्थान होते हैं। उनके पर्याप्त अवस्था में दस प्राण-पाँच इन्द्रियाँ, मन, वचन, काय, श्वासोच्छ्वास एवं आयु तथा अपर्याप्त अवस्था में मन, वचन एवं श्वासोच्छ्वास को छोड़कर शेष सात प्राण होते हैं।

भोगभूमिज जीव आहार, भय, मैथुन और परिग्रह इन चार संज्ञाओं से; मनुष्य एवं तिर्यञ्चगति से; पञ्चेन्द्रिय जाति से; त्रसकाय से; ग्यारह योगों-4 मनोयोग, 4 वचनयोग, औदारिक, औदारिकमिश्र एवं कार्मणकाययोग से; पुरुषवेद एवं स्त्रीवेद से, सम्पूर्ण कषायों से; मति-श्रुत-अवधि-मत्याज्ञान-श्रुताज्ञान-विभंगावधि इन छः ज्ञानों से; सर्व असंयम से; चक्षु-अचक्षु एवं अवधि इन तीन दर्शनों से संयुक्त होते हैं। ये अपर्याप्तक अवस्था में दोनों गुणस्थानों में कृष्ण, नील एवं कापोत लेश्याओं से तथा पर्याप्त अवस्था में चारों गुणस्थानों में तीनों शुभ-पीत, पद्म एवं शुक्ल लेश्याओं से युक्त होते हैं। ये भव्यत्व एवं अभव्यत्व से; औपशमिक, क्षायिक, वेदक, मिश्र, सासादन और मिथ्यात्व से संयुक्त होते हैं। ये संज्ञी; आहारक एवं अनाहारक तथा साकार एवं निराकार उपयोग वाले होते हैं। भोगभूमिज तिर्यंच और मनुष्य मन्दकषायी, पुण्य प्रकृतियों के उदय वाले तथा विविध विनोदों में आसक्त होते हैं। (12)

कुभोगभूमि

कुमानुष जहाँ जन्म लेते हैं, वे जहाँ रहते हैं, उस स्थान को कुभोगभूमि या कुमानुषद्वीप कहते हैं। कुभोगभूमि में उत्पन्न मनुष्य गुफा एवं वृक्षतल में रहते हैं तथा फल-फूलों को खाकर जीवनयापन करते हैं। यहाँ के मनुष्य पाप कर्मों के फलस्वरूप कुत्सित रूप को धारण करने वाले होते हैं। लवण समुद्र के अभ्यन्तर भाग में 24, बाह्य भाग में 24 इसी प्रकार कालोदधि समुद्र के आभ्यन्तर भाग में 24 एवं बाह्य भाग में 24 कुल 96द्वीपों में कुभोगभूमि हैं। इन द्वीपों में रमणीय उपवन, तडाग एवं फलपुष्पसमन्वित वृक्ष पाये जाते हैं। कुभोगभूमियों में

एक जंघा, एक कर्ण, पशुमुख, मत्स्यमुख, गोमुख, मेघमुख, विद्युन्मुख, हस्तिमुख आदि कुत्सित आकृति वाले मनुष्य होते हैं। एक जंघा वाले पूर्व दिशागत कुमानुष मीठी मिट्टी खाकर शेष फल-फूल खाकर जीवनयापन करते हैं। ये सभी मन्दकषायी होते हैं, इनकी आयु एक पल्य है। इनका जन्म-मरण अन्य भोगभूमिजों के समान ही होता है। इन मनुष्यों का मृत शरीर भी भोगभूमि के मनुष्यों के समान कर्पूर की तरह उड़ जाता है। इनका अग्निसंस्कार आदि नहीं होता है। कुमानुष द्वीपों में तिर्यंच नहीं पाये जाते हैं, वहाँ मनुष्यगति नामकर्म के उदय वाले मनुष्य ही उत्पन्न होते हैं। कुभोगभूमि की सम्पूर्ण व्यवस्था जघन्य भोगभूमिवत् कही गई है। (13) तीस भोगभूमियों एवं छ्यानवें कुभोग भूमियों में केवल सुख ही होता है, जबकि कर्मभूमि में सुख-दुख दोनों होते हैं। (14)

भोगभूमि में चारित्र का अभाव

भोगभूमिजों में उत्कृष्ट रूप से चार गुणस्थान ही रहते हैं। धवला में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि भोगभूमि में उत्पन्न हुए जीवों के अणुव्रतों का ग्रहण नहीं बन सकता है।(15) चारित्र ग्रहण न कर पाने का उल्लेख करते हुए श्री यतिवृषभाचार्य ने लिखा है-

'ते सव्वे वरजुगला अण्णोण्णुप्पण्णवेमसंगूढा।
जम्हा तम्हा तेसुं सावयवद संजमो णत्थि॥'

अर्थात् वे सब भोगभूमिज उत्तम युगल पारस्परिक प्रेम में अत्यन्त मुग्ध रहते हैं, अतएव उनके श्रावक के व्रत और संयम नहीं होता है। भट्ट अकलंक देव का भी कथन है कि भोगभूमियों में यद्यपि ज्ञान एवं दर्शन तो होता है, परन्तु भोग परिणामी होने से उनके चारित्र नहीं होता है। (17)

यहाँ यह विशेष ध्यातव्य है कि यद्यपि भोगभूमियों में संयतासंयत एवं संयत तिर्यंच या मनुष्य नहीं होते हैं, तथापि पूर्व वैर के कारण देवों द्वारा वहाँ ले जाकर डाले गये ऐसे तिर्यंच या मनुष्य संभव हैं। (18)

भोगभूमियों की संख्या

देवकुरु, उत्तरकुरु, हैमवत, हरि, रम्यक् और हैरण्यवत ये छः भोगभूमियाँ हैं। पाँच मेरु सम्बन्धी होने से इनकी संख्या (5 × 6=30) तीस हो जाती है।

अन्तर्द्वीपज कुभोगभूमियों की संख्या छ्यानवें है। लवण समुद्र के अन्दर एवं बाहर तथा कालोदधि समुद्र के अन्दर एवं बाहर भाग में 24-24 (24 × 4 =96) कुभोगभूमियाँ हैं।

संदर्भ :

1. तिलोयपण्णत्ती, 1/136-138
2. भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि। तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्महा-हिमवन्निषधनीलरुक्मिशिखरिणो वर्षधरपर्वताः। तत्त्वार्थ सूत्र 3/10-11
3. सर्वार्थसिद्धि, 3/37-
4. भगवतीआराधना, 780 की विजयोदया टीका

5. तिलोयपण्णत्ती, 4/345-358
6. महापुराण, 9/37-39
7. भरतैरावतविदेहा: कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरुत्तरकुरुभ्य:। - तत्त्वार्थसूत्र, 3/37
8. भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम्। - वही, 3/27
9. द्र. तिलोयपण्णत्ती, 4/324-396
10. द्र. वही, 4/400-405
11. द्र. वही, 4/407-413
12. द्र.वही, 4/416-427
13. रत्नत्रय त्रिलोक रत्नाकर, पृष्ठ 338-342 (गणिनी आर्यिका विशुद्धमति)
14. **''छब्बीसदुखेकसयं पमाणभोगक्खिदीण सुहमेक्कं।**
कम्मखिदीसु पराणं हवेदि सोक्खं च दुक्खं च॥'' - तिलोयपण्णत्ती, 4/2999
15. भोगभूमावुत्पन्नानां तदुपादानानुपत्ते:। धवला, 1.1.1
16. तिलोयपण्णत्ती, 4/386
17. भोगभूमिषु यद्यपि मनुष्याणां ज्ञानदर्शने स्त:, चारित्रं तु नास्ति, अविरतभोगपरिणामित्वात्।- तत्त्वार्थराजवार्तिक, 3/37
18. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, 2/236पृ.

उपाचार्य एवं अध्यक्ष- संस्कृत विभाग, एस.डी. (पी.जी.) कालेज, मुजफ्फरनगर (उ.प्र.)- 251001

चाय कॉफी से मांगे माफी

आजकल आधुनिकता दिखावे की होड़, झूठी शान में चाय-कॉफी व अनेक सोफ्ट ड्रिन्क्स का प्रमुख स्थान है इनमें कैफीन व अन्य हानिकारक पदार्थ होते हैं। जो एक बार रक्तचाप व दिल की धड़कन की गति कुछ बढ़ाते हैं। अंत में दिमाग, नर्वस सिस्टम दिल पेट व शरीर के अन्य हिस्सों को खराब कर देते हैं। कैलीफोर्निया यूनिवर्सिटी द्वारा 25000 कॉफी पीने वालों की जाँच से पता चला कि चाय कॉफी सोफ्टड्रिन्क्स आदि डिप्रैशन, नर्वसनैस, अल्सर आदि को बढ़ावा देते हैं। इनसे कैंसर एवं रक्तचाप का खतरा रहता है। सभी मादक पदार्थों में कैफीन और टेनिन होता है जिनसे चिंता व निराशा उत्पन्न होती है। चाय, कॉफी, कोला (सॉफ्ट ड्रिंक्स) अल्सर, अनिद्रा, उच्चरक्तचाप, दांतों को खराब, हृदय रोग, ब्लड प्रैशर, सर दर्द, दांत दर्द आँखों की बीमारी, जिगर व यूटेरस के रोग, छाती एवं पेट के रोग करते हैं। मान का तो पान ही बहुत है। अत: मेहमान का स्वागत चाय, कॉफी, सोफ्ट ड्रिन्क्स आदि हानिकारक पदार्थों के स्थान पर प्रेमपूर्वक लाभकारी पदार्थों से करना ही अच्छा है।

पारसचन्द से बने आर्जवसागर

आर्यिकारत्न श्री प्रतिभामति माताजी

बंगाल की ओर विहार:

दिसम्बर महिने में टाटा नगर, चाईबासा, आदि कुछ नगरों से विहार करते हुए मुनिवर आर्जवसागरजी ससंघ बंगाल प्रान्त की ओर पहुँचे। मुनिवर का ससंघ बंगाल प्रान्त के पुरूलिया नगर में भव्य मंगल प्रवेश हुआ। कुछ अल्प दिनों के प्रवास से मंगल प्रवचन के साथ धार्मिक पाठशाला का उद्घाटन भी किया गया। शीतकालीन हेतु समाज द्वारा नम्र निवेदन होने के उपरान्त भी गुरुवर आर्जवसागरजी महाराज का ससंघ पुन: सम्मेदशिखरजी दर्शन की भावना से और शेष रह गयी चम्पापुरी यात्रा पूर्ण करने के निमित्त काला पत्थर गाँव से होते हुए ईसरी की ओर आगे बढ़ते चले गये। मुनि संघ के साथ में राँची नगर के लोग बहुत संख्या में पद यात्रा कर रहे थे। प्रतिदिन बस और गाड़ियों से लोग आकर बड़ी प्रभावना करने में संलग्न थे। कुछ ही दिनों में ईसरी पहुँचने के बाद ईसरी में स्थित उदासीन आश्रम की कमेटी ने गुरुवर आर्जवसागरजी को शीतकालीन वाचना हेतु नम्र निवेदन किया। ईसरी आश्रम की सम्हाल राँची के लोग ही व्यवस्थित रूप से कर रहे थे। मुनिवर ने मुस्कराते हुए आश्वासन दे दिया। लेकिन अपने गुरु भाई मुनिश्री प्रमाणसागरजी का मधुबन प्रवास जानकर और उनका समाचार मिलते ही उनसे मिलने हेतु मधुबन में मंगल प्रवेश किया।

इस भव्य मंगल प्रवेश पर मधुबन से एक किलोमीटर दूर ही मुनिवर आर्जवसागरजी, ऐ.अर्पणसागरजी के ससंघ आगवानी के निमित्त मुनिश्री प्रमाणसागरजी एवं आ. रत्नश्री पूर्णमतिजी ससंघ लेने आयीं और गुरु भाई दोनों मुनिराजों का आपस में वात्सल्यपूर्ण नमोस्तु पूर्वक हृदय मिलन हुआ। जिसे देखकर सारी जनता के अन्दर एक अपूर्व खुशी का नजारा देखने को मिला। खुशी से आँखें सजल हो रही थी मानो। आर्यिका रत्न पूर्णमतिजी ने ससंघ दोनों मुनिवर को नमोस्तु पूर्वक तीन प्रदक्षिणायें लगाईं और रत्नत्रय की कुशलता पूछी। यू.पी. प्रकाश भवन के सामने कमेटी द्वारा मुनिवर का पाद प्रक्षालन किया गया। फिर ससंघ अपार जन समूह के साथ सभी लोग तेरह पंथी कोठी पहुँचे।

वहाँ पर पादप्रक्षालन, आरती आदि के माध्यम से मुनि संघ का पावन अभिनन्दन हुआ। सभी लोगों ने सायंकाल एक साथ गुरुभक्ति आदि करते हुए सवात्सल्य करीब एक सप्ताह धार्मिक चर्चा, पर्वत की वंदनाएँ एक साथ सम्पन्न कीं। फिर मुनिवर आर्जवसागरजी को रुकने का आग्रह किये जाने पर भी ईसरी आश्रम के शीतकालीन निवेदन को ध्यान में रखते हुए मुनिवर आर्जवसागरजी ससंघ ईसरी पधारे।

ईसरी में मुनिवर के ससंघ शीतकालीन जनवरी माह के प्रवास दौरान तीर्थोदय काव्य पर वाचना चली। जिसमे ईसरी के ब्रह्मचारियों व्रती एवं श्रावकों ने धर्म चर्चा एवं जिज्ञासा समाधान द्वारा अच्छा लाभ लिया। तदुपरान्त फरवरी माह में मधुबन शिखरजी पहुँचकर कुछ वंदनायें करके सम्मेदशिखरजी की समाज की रुकने का आग्रह होते हुए भी मुनिवर ने ससंघ गिरिडीह होते हुए भागलपुर की ओर विहार किया।

इस विहार के पुण्यार्जक राँची वाले श्रावकगण थे। सम्मेदशिखरजी से नवीन जैन तथा साथ में कोपरगाँव, एलोरा और मध्यप्रदेश आदि से लोग विहार हेतु साथ में चल रहे थे। बीच में देवघर नाम के नगर में महाकवि

आचार्य ज्ञानसागर महाराज के पूर्व अवस्था के भतीजे और झारखण्ड धर्मिक न्यास बोर्ड के अध्यक्ष ताराचन्दजी जैन छाबड़ा ने अपने घर पर भी मुनिवर की नवधाभक्ति पूर्वक आहारदान देने का सौभाग्य प्राप्त किया। देवघर के सुन्दर जिनालय का दर्शन भी हुआ। फिर मुनिसंघ का विहार मंदारगिरी की ओर हो गया। मंदारगिरि का वासुपूज्य भगवान का दर्शन करके दो दिन ठहरकर भागलपुर की ओर चल दिये।

भागलपुर पहुँचने के बाद चम्पापुर पहुँचे। वहाँ पर करीब तीन दिन ठहरकर वासुपूज्य भगवान के तीन कल्याणकों के स्थान का दर्शन कर अपूर्व आनन्द हुआ। फिर वहाँ से विहार करके नवादा, गुणावा की ओर विहार किया। वहाँ के दर्शन करके पावापुरी पहुँचे। पावापुरी की अच्छी तरह से वन्दना होने के उपरान्त राजगृही क्षेत्र का दर्शन दूसरी बार हुआ। मुनिश्री प्रमाणसागरजी से भी करीब दो महीने के अन्तराल में ही दूसरी बार पुनः मुनिवर का भव्य मिलन हुआ।

फिर राजगृही के पाँचों पर्वत की वन्दनायें सम्पन्न करके होली पर गया नगर पहुँचे। वहाँ करीब पाँच दिन प्रवास किया। पहले वर्ष की भांति प्रवचन माला आदि और धार्मिक पाठशाला की कलशस्थापना का भव्य कार्यक्रम में श्री विमलसेठी ने बहुत उत्साह दिखाया। इस बार गया के मंगलप्रवेश और गमन पर मुनिवर आर्जवसागरजी ससंघ के लिए पूर्व से ठहरे मुनिश्री अनेकान्तसागरजी महाराज आगवानी और भेजने को विनयपूर्वक तत्पर रहे।

पश्चात् मुनिवर का विहार औरंगाबाद (बिहार), डेरीओन्सोन मुगलसराय की ओर हुआ। तदुपरान्त बनारस पहुँचकर वहाँ मेदाग्नी जिनालय की धर्मशाला में पाँच दिन प्रवास किया। और भ. पार्श्वनाथ, भ. सुपार्श्वनाथ, भ. श्रेयांसनाथ आदि के कल्याणकों स्थानों का अवलोकन करते हुए इलाहाबाद की ओर विहार किया। पश्चात् मुनिवर आर्जवसागरजी महाराज ने ससंघ प्रयाग में नव निर्मित कैलाशगिरि का दर्शन करते हुए गंगा, यमुना, सरस्वती का संगम भी देखा। और जिस वट वृक्ष के नीचे भ.आदिनाथ को केवलज्ञान हुआ उस स्थान पर स्थित पुरानी प्रतिमा का भी दर्शन किया। और इलाहाबाद के जिनालय में प्रवचन कर वहीं से आहारचर्या सम्पन्न की। तदुपरान्त रीवा नगर की ओर विहार किया। कुछ ही दिनों में महावीर जयन्ती के पूर्व गुरुवर आर्जवसागरजी महाराज का ससंघ बड़ी प्रभावना के साथ रीवा नगर में भव्य मंगलप्रवेश सम्पन्न हुआ।

रीवा नगर के जैन जन समूह द्वारा महावीर जयन्ती एवं मुनिवर का दीक्षा दिवस मनाने हेतु नम्र निवेदन करने के उपरान्त उन्हें आशीर्वाद मिला। सम्मेद शिखरजी, राँची आदि से साथ आये हुए लोगों को आगे भी विहार कराने का भाव होते हुए भी अब जैन समाज की यहाँ बहुलता है और आप चिंता छोड़िए अब रुकते हुए विहार करना है ऐसा कहकर अपने प्रदेश लौटने के लिए कह दिया। उन सबका समाज के द्वारा सम्मान होने के उपरान्त विदाई कर दी गई।

महावीर जयन्ती के शुभ दिन भ.शान्तिनाथ जिनालय से श्रीजी की शोभा यात्रा विमानोत्सव पूर्वक प्रारम्भ की गयी। नगर भ्रमण में लोगों ने अपने गृह के सामने मुनिवर के पाद पक्षालन एवं आरती उतारी। तदुपरान्त मंगल प्रवचन हुआ और मध्यान्ह में मुनिवर का 21वां दीक्षा दिवस समारोह एवं पाठशाला के सांस्कृतिक कार्यक्रम सम्पन्न हुये। लोगों के द्वारा मुनि संघ को ठहरने हेतु विशेष आग्रह किये जाने पर करीब 25 दिनों तक

मंगल प्रवचन मालायें सम्पन्न हुईं और धार्मिक पाठशाला का भी शुभारंभ किया गया। विजय अजमेरा, अतुल जैन और कमिश्नर वेद साहब आदि परिवार जनों ने संघ की प्रभावना का अच्छा लाभ उठाया। तदुपरान्त समाज के निवेदन पूर्वक सतना नगरी की ओर विहार हो गया। बीच रास्ते में प.मूलचन्द लुहाड़िया भी आये थे। जिनके रीवा में प्रवास कर रहे उनके सुपुत्र ने सपरिवार रास्ते में चौका लगाकर नवधा भक्ति पूर्वक आहारदान देने का लाभ भी उठाया।

पश्चात् सतना नगरी में भव्य मंगल प्रवेश हुआ। सतना नगरी में मुनिवर के प्रतिदिन के प्रवचनों से अपूर्व प्रभावना हुयी। मध्यान्ह में वारसाणुवेक्खा का स्वाध्याय एवं पद्यानुवाद भी सम्पन्न किया। ग्रीष्म कालीन प्रवास पर सर्वोदय सम्यग्ज्ञान शिक्षण शिविर भी लगा। इस शिविर में करीब 400 शिविरार्थियों ने भाग लिया। इस शिविर में अबाल-वृद्ध सभी लोगों ने प्रवेशिका, छहढाला, जैनागम संस्कार, द्रव्यसंग्रह, इष्टोपदेश आदि विषयों पर शिक्षण प्राप्त किया। मुनिवर के इष्टोपदेश पर प्रवचन हुये और पद्यानुवाद भी प्रारम्भ किया। समीक्षात्मक उद्बोधन भी होते रहे और शिविर में शिक्षण देने वाले विद्वान पी.सी. पहाड़िया, राजस्थान, महेश शास्त्री, दयाचन्द जी शास्त्री, श्री सिद्धार्थ जैन, श्री निर्मल जैन आदि तीन सत्रों में शिक्षण देने हेतु उपस्थित रहे। शिविर के उपरान्त सभी विद्वानों को मुनिसंघ के सान्निध्य में सम्मानित किया गया। शिविरार्थियों के लिए भी पुरस्कार वितरण किये गये।

इसी नगर में एक मुनिवर आर्जवसागर की करुणा का संस्मरण तैयार हुआ कि आहार से आते वक्त मुनिवर ने रास्ते में तोते बेचने आये किसी शिकारी के पिंजड़े में कैद तड़फते पाँच तोतों को देखा और करुणा झलक आयी। मन्दिर आते ही साथ आये चौके वाले पुरुषों को कहा कि उन तोतों को बंधन से छुड़वा दो, यह बड़ा अविस्मरणीय उपकार होगा। बस, कहते ही श्रावक भी करुणा के साथ गये और कुछ पैसों का ठहरावकर तोतों के साथ निर्दयी व्यक्ति को भी साथ लाये। मुनिवर ने उसे इसका परिणाम समझाया, बंधन में न बांधने और हिंसा को छोड़ने का उपदेश दिया। और छत पर जाकर के अपनी आँखों के सामने (आचार्यश्री की तोता क्यों रोता वाली कविता को याद करते हुए) उन तोतों को पिंजड़े से मुक्त करवा दिया।

पश्चात् सतना नगरी से विहार करते हुए अमरपाटन पहुँचे। वहाँ पर मंगलप्रवेश के पश्चात् श्रुतपञ्चमी पर्व गुरु सान्निध्य में मनाया और मुनिवर आर्जवसागरजी ने इष्टोपदेश का पद्यानुवाद भी पूर्ण किया एवं अमरपाटन नगर के भाग्य से धार्मिक पाठशाला की भी शुरुआत हो गई। तदुपरान्त समाज के लोगों द्वारा वर्षायोग के बहुत आग्रह करने पर भी मैहर नगर की ओर विहार किया। स्वल्प दिनों में यहाँ भी धार्मिक पाठशाला प्रारम्भ की। यहीं पर दमोह के लोग वर्षायोग हेतु निवेदन लेकर आने लगे। फिर जंगल के रास्ते से होते हुए श्रेयांसगिरि पहुँचे और गुफाओं का भव्य दर्शन कर आहारचर्या सम्पन्न हुई। पश्चात् सलेहा नगर पहुँचे। तीन दिन रुक करके धर्म की प्रभावना की। यहीं पर आहारचर्या के समय चौके में एक दिन लाईट जली देखने पर दूसरे चौके में पड़िगाहन के लिए तैयार रहते हुए भी मुनिवर ने अपने वृत्तिपरिसंख्यान के निमित्त अलाभ मान लिया। यहीं पर दमोह नगर के शाकाहार उपासना परिसंघ एवं सिविलवार्ड के चन्द्रकुमार आदि ने बहुत लोगों के साथ आकर मुनिवर आर्जवसागरजी के ससंघ चरणों में श्रीफल चढ़ाकर दमोह नगर की नन्हें मन्दिर की विशाल धर्मशाला में

वर्षायोग हेतु नम्र निवेदन किया।

सलेहा नगर के लोगों द्वारा वर्षायोग हेतु विशेष आग्रह होने पर भी मुनिवर ससंघ पवई होते हुए मोहनगढ़ में जिनबिम्बों का दर्शन करते हुए हटा नगर पहुँचे। कुण्डलपुर की कमेटी के निवेदन पर सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर में भव्य मंगल प्रवेश हुआ। स्वल्प दिनों में ही कुण्डल गिरि की वंदनायें और बड़े बाबा के दर्शन सम्पन्न किये और तभी पूर्व में गुरुदेव के साथ सम्पन्न हुये वर्षायोग आदि की स्मृतियाँ ताजी हो गयीं। नव निर्मित निर्माणधीन पाषाण के कलात्मक नवीन जिनालय का कमेटी के अध्यक्ष संतोष सिंघई के आग्रह से ऊपर चढ़कर अवलोकन किया। विद्याभवन में रविवारीय प्रवचन भी सम्पन्न हुये। वर्षायोग हेतु कमेटी द्वारा निवेदन भी किया गया। लेकिन दमोह नगर से आये भक्तों के विशेष आग्रह और पुण्य से मुनिवर का ससंघ विहार पटेरा, हिंडोरिया होते हुए दमोह की ओर हो गया।

श्री आर्जवसागराष्ट्कम्

-आर्यिकारत्न श्री प्रतिभामति माताजी

1

जैसे जम्बूदीप मध्य में, पर्वत मेरु सुशोभित है।
वैसे धर्मिक क्षेत्रों में यह मध्यप्रदेश प्रशंसित है॥
दमोह जिले के फुटेराकलाँ में, भाद्र शुक्लाष्टमी को।
प्रात:काल में चार बजे वह, मिला सूर्य बालक जग को॥

2

शिखरजन्दजी माया माँ का, लाल बड़ा ही न्यारा था।
कान्तिमान सुन्दर सुडोल तन, पारसचन्द सब प्यारा था॥
तीन भाई और एक बहिन सह, धार्मिक शुभ परिवार रहा।
छहढाला व मोक्षशास्त्र पढ़, बाल्यपने में ज्ञान बढ़ा॥

3

पूर्व भव के पुण्य उदय से, भव गृह से वैरागी हुए।
सत्रह वर्ष में ब्रह्मचर्य अरु, सप्तम प्रतिमाधारी हुए॥
विद्या गुरु से अहारजी में, उत्तम क्षुल्लक धारी हुए।
अतिशय थूबोनजी क्षेत्र में, सु-सौम्य ऐलक धारी हुए॥

4

सन् अट्ठासी के वीर जयन्ती पर, सिद्ध क्षेत्र सोनागिरी में।
विद्यागुरु के कर कमलों से, मुनि पद पाया शिवमग में॥
एक वर्ष तक मौन है धारा, निज उद्धार किया पावन।
ऐसे आर्जवसागर गुरु को, शत् शत् वन्दन नित अर्पण॥

5

इनकी समता ध्यान की मुद्रा, जिनवर याद दिलाती है।
परिषहों को हँसकर सहते, कर्म निर्जरा भाती है॥
व्रत समिति व गुप्ति धर्म में, लीन सदा श्रद्धान अचल।
काव्य कुशलता ग्रन्थ सु-लेखन, सौख्य सुबोधित और सरल॥

6

भारत के तेरह देशों में, धीर-वीर बन किया विहार।
मिथ्यादर्शन खण्डन करके, समदर्शन का किया प्रचार॥
सोलहकारण करवा करके, भवि उद्धार किया भारी।
वात्सल्य की बहे नर्मदा, करुणा दृष्टि अति प्यारी॥

7

बहुभाषी वे श्रेष्ठ श्रमण हैं, देश विख्यात सु-साधु महान्।
निपुण रहे शिष्यानुग्रह में, धर्म प्रभावक प्रतिभावान॥
वृद्धाचार्य श्री सीमन्धर ने, समाधि हेतु पद तुम्हें दिया।
माघ शुक्ला षष्ठी के दिन, आचार्य बने जग धन्य किया॥

8

जयवंतों गुरु पंच महाव्रत-पालक हित-मित भाषक हो।
जयवंतों गुरु संयम शिक्षा-दीक्षा दायकनायक हो॥
जयवंतों गुरु आर्जवसागर-सूरी जगत सुख दायक हो।
जयवंतों गुरु तुम पाप विनाशक, शिव पथ उत्तम धारक हो।

आर्जवसागराचार्य के, चरण नमूँ शुभकार।
''प्रतिभा'' जीवन में बढ़े, कर दो भव से पार॥

विज्ञान एवं विचार में आमंत्रण

धरती बचाना है तो क्या जीवन भी बचाना होगा?

-अखिलेश आर्येन्दु

(विकास और विनाश एक साथ नहीं हो सकते, तो फिर सोचिए-हम क्या कर सकते हैं)

प्रश्नः मानवतावादियों का मानना है कि मानव सभ्यता की सुबह अभी हुई ही नहीं? क्या मानव की सभ्यता अंधरे में है?

उत्तर : मानव सभ्यता की सुबह का प्रश्न का मतलब यह है कि मानव सभ्यता का वह उजला पक्ष जहाँ प्रत्येक प्राणी को जीने का पूरा अधिकार हो। उसे मानव अपने स्वार्थ और स्वाद के कारण न सताता हो और न ही उसकी हत्या ही करता हो। क्योंकि जहाँ हत्या, क्रूरता, प्रताड़ना और घृणा होती है वहाँ उजाला हो ही नहीं सकता। यह मानव का अंधेरा पक्ष है।

प्रश्न : फिर क्या मानव की सारी उन्नति, विकास और प्रगति का कोई मतलब नहीं है?

उत्तर : मानव मूल्यों को यदि हम मानव जीवन की पहचान समझते हैं या मानव मूल्यों को ही मानव का आधार मानते हैं। ऐसे में मानव कितनी भी प्रगति, विकास और उन्नति करले उसका कोई औचित्य नहीं रह जाता है।

प्रश्न : विज्ञान के आहार-चक्र के अनुसार प्रत्येक प्राणी एक दूसरे पर निर्भर है। फिर इंसान यदि पशु-पक्षियों और जलचरीय प्राणियों (मछली मेढक आदि) को अपना आहार बनाता है तो इसमें बुराई क्या है?

उत्तर : आधुनिक विज्ञान आहार को जिस रूप में प्रस्तुत करता है वह मानव मूल्यों (ह्यूमन वैल्यूज़) से कोई ताल्लुक नहीं रखता। इंसान समाज से ताल्लुक रखने वाला प्राणी है। यदि आहार के नाम पर मूल्यों का क्षरण होता है तो ऐसा विज्ञान-चक्र मानव समाज के लिए कभी आदर्शवादी नहीं हो सकता। इसलिए विज्ञान का आहार-चक्र मानव सभ्यता की उत्कृष्टता के लिए किसी भी तरह स्वीकार्य नहीं हो सकता।

प्रश्न : धरती पर यदि पशु-पक्षियों को और नदी तथा समुद्र की मछलियों को आहार न बनाया जाए तो धरती जानवरों और पक्षियों से तथा नदी व समुद्र मछलियों और अन्य जीवों से भर जाएगा जिससे बहुत बड़ी समस्या पैदा हो जाएंगी?

उत्तर : यह बात ऐसी है कि यदि मच्छरों को न मारा जाए तो सारी धरती मच्छरों से भर जाएगी और इंसान का रहना मुश्किल हो जाएगा। हम क्या कह सकते हैं कि अरबों-खरबों मच्छरों के कारण आज तक इंसान को धरती पर रहना मुश्किल हुआ। इसी तरह कौआ का मांस तो कोई नहीं खाता उनकी आबादी क्यों नहीं बढ़ जाती? कुदरत का काम है सभी जीवों की आबादी को संतुलित करना। इंसान को जीवों की आबादी को संतुलित रखने के नाम पर उनकी हत्या करने का कोई औचित्य नहीं है। यह केवल स्वाद और स्वार्थ के कारण हिंसा को जायज ठहराने का एक बहाना है।

प्रश्न : चिकित्सक कहते हैं कि आदमी के लिए मांस, मछली और अंडे का सेवन तंदुरुस्ती और

जवान बने रहने के लिए जरूरी होता है। इसमें कितनी सच्चाई है?

उत्तर : यह चिकित्सकों का अपनी मान्यता और अंग्रेजी चिकित्सा शास्त्र में पढ़ाए गए पाठ्यक्रम के आधार पर है। लेकिन दूसरी तरफ अनेक पश्चिमी वैज्ञानिकों ने अपने शोध के आधार पर यह साबित कर दिया है कि मांसाहार से न तो तुदुरुस्ती बेहतर रहती है, न तो जवानी ही बहुत दिनों तक बरकरार रहती है। सच्चाई तो यह है कि मांसाहार और अंडे से सौ अधिक बीमारियां पैदा होने का खतरा पैदा हो जाता है।

इंग्लैंड के आहार विशेषज्ञ डॉ. टॉमस ने मनुष्य के स्वभाव पर अनेक प्रयोग किये हैं। वे कहते हैं- हम जैसा भोजन करते हैं उसके अनुसार ही हमारे शरीर में कोषाणु बनते हैं और जो गुण-दोष खुराक में होते हैं वे हमारे शरीर में आ जाते हैं। आयुर्वेद भी यही कहता है कि मांस, मछली व अंडे में पाए जाने वाले विष शरीर में पहुँचकर शरीर को रोगी और विषैला बना देते हैं।

प्रश्न : शाकाहार या मांसाहार का प्रयोग इंसान के विवेक के ऊपर छोड़ देना चाहिए। इंसान जो चाहे वह खाए, इंसान का मौलिक अधिकार है, वह जो चाहे वह खाए और जो चाहे वह पिए। इसमें क्या समस्या है?

उत्तर : मौलिक अधिकार का मतलब यह तो नहीं होता कि हम अधिकार के नाम पर हिंसा, क्रूरता, दुःख, विनाश और दुर्वृतियों को जायज ठहराएं। यदि मौलिक अधिकार के नाम पर धरती के अन्य प्राणियों के जीने के अधिकार का हनन होता है तो क्या इसे जायज ठहराया जा सकता है? मानव अपने अधिकारों के नाम पर अन्य प्राणियों के जीवन जीने के अधिकारों का हनन करता है या समाप्त करता है तो क्या इसे हम मानव सभ्यता वाले मूल्यों के अनुरूप मान सकते हैं? जहाँ मानव मूल्यों का मानव सभ्यता का आधार माना गया है।

प्रश्न : मांसाहार से सामान्यतौर पर मुझे कोई समस्या दिखाई नहीं पड़ती। बल्कि इस बूढ़े और अनुपयोगी जानवरों का आहार के रूप में बेहतर इस्तेमाल हो जाता है। फिर शाकाहार को ही मानव आहार बताने का क्या औचित्य?

उत्तर : सामान्यतौर में कोई बुराई यदि नहीं दिखाई देती तो इसका मतलब यह तो नहीं होता कि मांसाहार करना हर तरह से मुफीद है। मांसाहार से मानव समाज को सबसे बड़ी हानि पर्यावरण का बढ़ता असंतुलन और खतरा, आर्थिक क्षति, शारीरिक और मानसिक बीमारियों का बढ़ते जाना, मानव और अन्य प्राणियों का आपसी संतुलन का बिगड़ते जाना और मानवीय मूल्यों का नाश जैसी अनगिनत हानियाँ शामिल हैं। हमें मांसाहार का इस्तेमाल के पहले यह क्या नहीं सोचना चाहिए कि क्या इससे शरीर, मन, परिवार, समाज, संस्कृति और मानवता को कोई नुकसान तो नहीं हो रहा है। जैसे किसी की हत्या करने के पहले उससे उठने वाली अनेक समस्याओं को हम जानते हैं उसी तरह यह भी हत्या ही है। बस फर्क इतना ही है कि मानव की हत्या करने को सबसे बड़ा अपराध माना गया है लेकिन अन्य अनबोले प्राणियों की हत्या करना जायज मान लिया गया है। मानव का यह दोहरा चारित्र है। यह प्रकृति के प्रति सबसे बड़ा अपराध है। हम इस बात को भूल जाते हैं कि जिस प्यार से प्रकृति ने हमें बनाया है उसी तरह से अन्य प्राणियों को भी बनाया गया है।

प्रश्न : इंसान के लिए ही तो कुदरत ने यह दुनिया बनाई है। यदि इंसान इनका इस्तेमाल नहीं करेगा तो ये किस काम की है। क्योंकि इंसान ही तो इस धरती का सबसे बुद्धिमान, ज्ञानवान और

प्राणवान प्राणी है। जैसे वनस्पतियों और औषधियों का हम इस्तेमान करते हैं वैसे पशु-पक्षियों का करते हैं तो इसमे गलत क्या है?

उत्तर : यह बात ठीक है, धरती का सबसे बुद्धिमान, होशियार और ज्ञानवान प्राणी इंसान है। और यह भी ठीक है कि इसे धरती के विकास के लिए धरती पर मोजूद संसाधनों और अन्य वस्तुओं को इस्तेमाल करने का अधिकार वह मानता है। लेकिन किसी प्राणी की हत्या करके उसके जीने का मौलिक अधिकार को ही खत्म करने का अधिकार किसने दिया है? वनस्पतियों और औषधियों के इस्तेमाल और पशु-पक्षियों के इस्तेमाल का कोई मेल नहीं है। वनस्पतियों और औषधियों की हम हत्या करके उन्हें नहीं प्राप्त करते बल्कि उनका इस्तेमाल करने से उनका विकास होता है, लेकिन पशु-पक्षियों की हत्या करके उनके मांस खाने से अनेक समस्याएं बढ़ती हैं जब कि वनस्पतियों और औषधियों के इस्तेमाल करने से समस्याएं और संकट दोनों खत्म होते हैं। मेरे इस तथ्य को तर्कसंगत ढंग से समझिए।

प्रश्न : हम इस बात को कैसे मान लें कि मांसाहार, अंडे और मछली के सेवन से मानव के लिए कई समस्याएं पैदा हो जाती हैं। विकसित देशों में अधिकांश लोग मांसाहारी हैं। वहाँ तो जानवरों को खूब अन्न, मेवे और फलों का सेवन कराके उन्हें हष्ट-पुष्ट करके उन्हें काटा जाता है। फिर डिब्बे में पैक करके बेचा जाता है। यह तो आधुनिक विज्ञान के अनुसार एक विकसित आहार-तंत्र है। फिर समस्या कहाँ है?

उत्तर : विकसित देशों के अनेक वैज्ञानिकों ने अपने अनुसंधानों के आधार पर यह साबित कर दिया है कि मांसाहार से ऐसी अनेक प्राकृतिक समस्याएं, जटिलताएं और विसंगतियां पैदा हो जाती हैं जो इंसान को कई स्तरों पर प्रभावित करती हैं। जिस जानवर को मोटा करके उसका मांस खाया जाता है यदि जानवर को खिलाए गए अन्न, मेवे और फल को सीधे इंसान खाए तो बहुत ही सस्ते दाम में उसे मिल सकता है। साथ ही हिंसा, क्रूरता, दु:ख और अनेक अन्य समस्याओं से भी बच सकता है।

मांसाहार से परहेज करके और शाकाहार को बढ़ावा देकर आप जीवन और धरती की अनेक समस्याओं से बच और बचा सकते हैं। आपकी भूमिका प्राणियों की हत्या में नहीं बल्कि उनके संरक्षण यानि बचाने में हो सकती है।

अखिलेश आर्येन्दु, जीवन बचाओ-धरती बचाओ, 09868235056,
अणुडाक: akhilesh.aryendu@gmail.com प्रकाशक: डॉक्टर्स फोरम, नईदिल्ली,
011-26191805/28520446, अणुडाक: aws.in@outlook.com

भाव विज्ञान पत्रिका के इस मार्च 2017 के विशेषांक हेतु रंगीन पेज देने वाले श्रीमज्जिनेन्द्र पंचकल्याणक महामहोत्सव समिति, श्री दिगम्बर जैन नन्हें मंदिर, दमोह (म.प्र.) को पुण्यार्जक हेतु प्रकाशक, भाव विज्ञान की ओर से धन्यवाद ज्ञापित करते हैं।

समाधान

-हनुमान सिंह गुर्जर

साधन और साध्य में समाधान होना चाहिए।
शुद्धता में दोनों को, एक समान होना चाहिए॥

चलने से पहले मानव को, अनेक राहें दिख जाती हैं।
पथ की भूल भूलैया में फंस, ना बेवजह रोना चाहिए॥

गलती और कमियों की तो, इस जीवन में कोई कमी नहीं।
किन्तु बेमतलब की बातों को, ना उम्र भर ढोना चाहिए॥

व्यवहार सतर्कता से करना, हर कर्म का फल रक्षित होगा।
बाधक कहीं जो बन जावे, ना बीज कभी ऐसा बोना चाहिए॥

साध्य परीक्षा लेता पूरी, वह पूर्ण योग्यता चाहता है।
हर कोण से जीवन हो विकसित, ना खाली कोई कोना चाहिए॥

एक ही साधन होता है, किसी एक लक्ष्य को पाने का।
गलत काम में समय लगाकर, ना वक्त हमें खोना चाहिए॥

सच्चा मार्ग दिखाकर पहले, फिर चलना भी सिखला दे जो।
परम पूज्य मेरे गुरु सा, एक गुरु अवश्य होना चाहिए॥

एस.डी.एम., झालावाड़ (रज.), मो.: 9414570200

वीर का आदर्श

-वासुदेवशरण अग्रवाल

भगवान महावीर की जयन्ती महत्व पूर्ण पुण्य तिथि है। पर उसका मनाना रिवाजमात्र न बन जाना चाहिए। महावीर शरीर की पूजा नहीं करते थे। वे तो आदर्श के प्रतीक हैं। मन, वाणी और कर्म की साधना कहाँ तक कोई कर सकता है। इसका उदाहरण भगवान महावीर का जीवन था। उस महान धर्म समुद्र के मेघजल सुदीर्घ काल तक बरसते रहे हैं। आगे भी वह अमृत जल प्रत्येक व्यक्ति के जीवन को सींच सके, इसके लिये आवश्यक है कि हम उस आदर्श को अपने जीवन में यथा शक्ति उतारने का प्रयत्न करें। हमारे सदाचार की शीतवायु पाकर ही धर्म का दिव्य जल आकाश से पृथ्वी पर आया करता है। उसी के लिये प्रत्येक समझदार व्यक्ति को धर्म भावना से भावित होना आवश्यक है।

भाव विज्ञान जैन धर्म प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता

समय : 15 दिन, अंक : 100

- 20 प्रश्नों में से प्रत्येक प्रश्न पर 5-5 अंक समान हैं।
- इन प्रश्नों में से एक प्रश्न का उत्तर दो लाइनों में वाक्य सहित लिखना अनिवार्य है।
- उत्तर राष्ट्रभाषा हिन्दी में लिखें। लिखकर काटे या मिटाए जाने पर अंक नहीं दिए जाएँगे।

सही उत्तर पर (✓) सही का निशान लगावें-

प्र.1. भ.शान्तिनाथ की माता का नाम क्या था?

सर्वयशा ( ) ऐरादेवी ( ) श्रीमति देवी ( )

प्र.2. भ. शान्तिनाथ की आयु कितनी थी?

1 लाख वर्ष ( ) 10 लाख वर्ष ( ) 55 हजार वर्ष ( )

प्र.3. भ. शान्तिनाथ की शरीर की ऊँचाई कितनी थी?

25 धनुष ( ) 30 धनुष ( ) 40 धनुष ( )

प्र.4. भ. शान्तिनाथ के समवसरण का विस्तार कितना था?

6 योजन ( ) 5 योजन ( ) $4\frac{1}{2}$ योजन ( )

हाँ या ना में उत्तर दीजिये-

प्र.5. भ. चक्रवर्ती शान्तिनाथ की 94000 रानियाँ थी। ( )

प्र.6. भ.शान्तिनाथ बारहवें कामदेव थे। ( )

प्र.7. भ. शान्तिनाथ के समवरण में प्रमुख गणधर चक्रायुध थे। ( )

प्र.8. भ. शान्तिनाथ के समवसरण में बैठे सभी श्रावक-श्राविकायें सम्यग्दृष्टि थे। ( )

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:-

प्र.9. भ.शान्तिनाथ ..... चक्रवर्ती हुये।

(तीसरे, पाँचवे, छठवे)

प्र.10. भ. शान्तिनाथ चक्रवर्ती के पास ..... नाम का चक्र था।

(काकनी, चूड़ामणि, सुदर्शन)

प्र.11. भ.शान्तिनाथ चक्रवर्ती के पास ..... निधियाँ होती हैं।

(पाँच, नव, सात)